गंगा-पुस्तकमाला का १६०वाँ पुष्प

कुबेर

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक
श्रीदेवीप्रसाद धवन 'विकल',
[ससुराल, आत्मदण्ड्या आदि के रचयिता]

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द २)] सं० २००१ वि० [सादी १।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली—दिल्ली-गंगा-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ
२. प्रयाग—प्रयाग-गंगा-ग्रंथागार, गोविंद-भवन, शिवचरणलाल रोड
३. काशी—काशी-गंगा-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क
४. पटना—पटना-गंगा-ग्रंथागार, मछुआ-टोली

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

जिनके चरणों में बैठकर यह कला सीख सका हूँ, उन्हीं प्रसिद्ध कलाकार—

पं० विश्वभरनाथ शर्मा 'कौशिक'

को यह छोटी-सी कृति सश्रद्धा भेंट करता हूँ।

देवीप्रसाद धवन 'विकल'

कुछ अपनी

'कुबेर' घटना-प्रधान उपन्यास है, भाव-प्रधान उपन्यास लिखने की क्षमता अभी मुझसे कोसों दूर है। 'कुबेर' को समाप्त करके पाठकों के सम्मुख लाने की मेरी बहुत दिनों से अभिलाषा थी, किंतु दिल की उड़ान और सक्रियता के बीच परिस्थितियों की एक प्राचीर-सी खड़ी रहती है। आज वह श्रम सफल हुआ, और 'कुबेर' पाठकों के सम्मुख है।

मैं कह चुका हूँ, 'कुबेर' घटना-प्रधान उपन्यास है, उसके पात्र जीते-जागते, चलते-फिरते आज के व्यक्ति हैं। घटना-प्रधान उपन्यास में न तो आदर्शवाद का आश्रय लिया ही जाता है, और न मैं उपन्यास में आदर्शवाद का आश्रय लेने का हामी हूँ। इससे तो पात्रों की मनोवैज्ञानिकता नष्ट होकर वे केवल लेखनी की क्रीड़ा-मात्र रह जाते हैं।

आदर्शवाद मनोविज्ञान का शत्रु है, और बिना मनोविज्ञान के पुट के पात्रों की मौलिकता आदर्शवाद की बलि-वेदी पर भेंट चढ़ जाती है। जिस पात्र को आदर्शवाद की सीधी सड़क पर ले जाने की चेष्टा की जायगी, वह कोरी कल्पना का चित्र होकर रह जायगा। वह किसी व्यक्ति विशेष का सच्चा और स्वाभाविक चित्रण नहीं हो सकता। मनोविज्ञान का विद्यार्थी तो रास्ता भटककर चलता है। वह प्रवृत्तियों का दास है, और प्रवृत्तियाँ किसी वाद की पाबंद नहीं होतीं, अतएव चरित्र-चित्रण और आदर्शवाद का कोई संबंध नहीं हो सकता।

और, 'कुबेर' तो मनोविज्ञान का विद्यार्थी है, वह रास्ता भटक-

कर चलना जानता है। उसके कार्यों में आदर्शवाद का पुट देना उसके निर्माणोद्देश्य की हत्या करना है। वह मनुष्य है, उसके हृदय है, वह परोपकारी है, किंतु अपनी दुर्बलताओं का वह स्वय शिकार है। वह अपने ही भावों में सोचता है, अपने ही मार्ग पर चलता है, और अपना निज का हृदय रखता है।

परिस्थिति घटना की जननी है, और घटनाओ को क्रम-बद्ध करके लिखा जाय, वही उपन्यास है। 'कुबेर' इसी प्रकार का एक उपन्यास है। आशा है, हिंदी-संसार इसका आदर करेगा।

पात्रो के चित्रण की सफलता में मेरे कतिपय मित्रों का हाथ है। उनमें श्रीबाँकेविहारीलाल अग्रवाल तथा पूज्य प० मदनगोपाल मिश्र प्रमुख हैं। मैं उन्हें विना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता।

लेखक

अवलोकन

खक का आग्रह है कि मैं इस उपन्यास की भूमिका लिख दूँ, यद्यपि मैं नहीं मानता कि उपन्यास के लिये भूमिका कोई आवश्यक अंग है। उपन्यास में भूमिका देने की प्रथा उस समय प्रारंभ हुई, जब लेखक को अपनी रचना पर पूरा संतोष नहीं होता था। आज की स्थिति दूसरी है। आज संतोष और विश्वास लेखक में पहले होना चाहिए, रचना तो उसके बाद की वस्तु है।

एक युग था, जब उपन्यास केवल मनोरंजन की वस्तु समझा जाता था। कल्पना चित्रों की उसमें प्रधानता रहती थी। ऐसे उपन्यास समाज और जीवन की समस्याओं पर प्रकाश न

डालकर व्यक्तियों के विशिष्ट चरित्र पर आधारित रहते थे। कथा में घटना-वैचित्र्य बढ़ाकर कोई विशेष चमत्कार-मात्र उत्पन्न कर देना उस समय की कला थी। ऐसे उपन्यास मनुष्य के ऊपर-ही-ऊपर तैरते थे। मानवात्मा के स्तर-स्तर को स्पर्श करने की ओर उनकी विशेष चेष्टा न थी। जीवन के स्थूल व्यापार लेकर कल्पना का एक महल खड़ा कर देना ही उस काल की उपन्यास-कला का एकमात्र उद्देश्य रहता था। संक्षेप में कहना चाहें तो उस काल के उपन्यास पाठक के लिये एक भूलभुलैयाँ के किस्म की चीज हुआ करते थे। पाठक भी केवल काल-क्षेप के लिये उपन्यास हाथ में लेते थे। जो लेखक पाठक को उपन्यास के अवलोकन में जितना अधिक तन्मय कर देने की शक्ति रखता था, वह उतना ही सफल माना जाता था। हिंदी - उपन्यास का प्रारंभिक युग कुछ इसी प्रकार का था।

इसके बाद आया प्रेमचंद-युग। और, प्रेमचंदजी की विशेषता थी चरित्र-चित्रण। उनकी कथा का आधार रहता था समाज और उसकी समस्याएँ। उपन्यास में वे एक विशिष्ट चरित्र का निर्माण करते थे। उनके उपन्यास का नायक केंद्र बिंदु होता था। शेष पात्र उसके चारों ओर घूमते थे। आदर्श और उसकी विरोधिनी प्रवृत्तियों के संघर्ष का घटाटोप उपस्थित करना उनका ध्येय रहता था। उनकी कथा का नायक प्रायः मानवीय दुर्बलताओं से परे होता था—

एक ऐसा व्यक्ति जो मनुष्य होकर भी मानववर्ग का प्राणी न होकर लगभग देवोपम होता था। उसके गुणों में यह विशेषता रहती थी कि दुर्गुणों की कोई सत्ता ही उसके आगे नहीं स्थिर हो पाती थी। अभिप्राय यह कि चरित्र में आदर्श-स्थापन की ओर उनकी विशेष गति थी।

किंतु इससे भी अधिक (और मैं तो कहना चाहूँगा कि सर्वाधिक पुष्ट) उनकी विशेषता थी एक नए संसार की सृष्टि करना। कल्पना-चित्र होकर भी उनके उपन्यास एक ऐसा वातावरण बना देते हैं कि पाठक अनुभव करने लगता है मानो वह स्वयं भी उसी जन-समूह का एक प्राणी है। पात्रों की सृष्टि में उनकी विशेषता है चरित्र की स्थिरता। जान पड़ता है, उनका प्रत्येक पात्र अपना एक सिद्धांत रखता है। उससे डिगना वह नहीं जानता। सेवा, त्याग, उदारता, पर-दुःख-कातरता और कष्ट-सहिष्णुता उनके आदर्श हैं और आज की सभ्यता के जो दुर्गुण हैं—वैभव के प्रति एक प्रलोभन, एक उत्कट लिप्सा, व्यक्तिगत उन्नति, फैशन-परस्ती, कपटाचरण और इन सबके भीतर जीभ लपलपाती हुई भोगलिप्सा, अपने आदर्शों के साथ वे इन्हीं वृत्तियों का संघर्ष उपस्थित करते चलते हैं। उनका कथा-संगठन भी इन्हीं उपादानों की भित्ति पर स्थिर रहता है। जीवन और समाज के लिये अपने विशेष संदेश की छाप डालना और उसका प्रचार करना वे उपन्यासकार के लिये आवश्यक मानते हैं।

प्रेमचंद-युग के उपन्यासकारों में पंडित विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक श्रीवृंदावनलाल वर्मा, श्रीचतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव प्रमुख हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या उपर्युक्त सभी उपन्यासकार प्रेमचंदजी की ही भूमि पर चलते हैं? इन्हें प्रेमचंद-वर्ग में स्थापित करने का कारण?

उत्तर स्पष्ट है कि ये सभी उपन्यासकार कथा के संगठन और उद्देश्य के प्रसार में लगभग एक-से हैं। आज समाज की जो स्थिति है, उसके सुधार की ओर ये सभी जैसे एकमत से उन्मुख हैं। समस्याओं के हल के संबंध में भी इनके विचार प्राय: समीपवर्ती हैं यद्यपि टेकनीक में वे थोड़ी-बहुत भिन्नता अवश्य रखते हैं।

दूसरे वर्ग के उपन्यासकार हैं श्रीजैनेंद्रकुमार, श्रीइलाचंद्र जोशी तथा भगवतीचरण वर्मा आदि। ये यथार्थवादी संप्रदाय के हैं। जीवन को खुली आँखों से देखने की दृष्टि इनमें यथेष्ट सजग है।

किंतु विश्व का उपन्यास-साहित्य मनुष्य और समाज के जिस मुक्त विकास की ओर उन्मुख है, उसकी ओर अभी हिंदी-उपन्यासकारों की दृष्टि गई नहीं। समाज की समस्याएँ भीषण हैं, केवल भारत की ही नहीं, सारे संसार की। किंतु राष्ट्रीयता का हमारा दृष्टिकोण क्या इसका उत्तर-दायी नहीं? यह आज जो घर-घर में चरित्र-हीनता का

विपाक्त वातावरण उपस्थित देख पड़ता है, और क्या गाँव और क्या नगर का औसत व्यक्ति सर्वमुखी ज्वालाओं, अनंतव्यापी नग्नताओं और विषाद, जर्जर-हीनताओं का शिकार हो रहा है, इसका कारण ? क्या इस स्थिति के मूल में हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं की अगतिमूलक रूढ़ियाँ और सर्वभक्षी, आधार-हीन तर्क-हीन, अंध-परंपराएँ नहीं ? व्यक्ति और जीवन के मूल्यांकन का दृष्टिकोण क्या इतना पुराना और अगतिमूलक नहीं कि आगे विकास का पथ ही अवरुद्ध हो गया हो ? और, क्या हमारा आज का सामाजिक संगठन इसका उत्तरदायी नहीं ?

ये ही वे समस्याएँ हैं, जिन पर आज का उपन्यासकार निरंतर स्थिर दृष्टि रखता चलता है। अतएव अपना एक निश्चित दृष्टिकोण रखने के कारण मुझे हिंदी के उपन्यास बहुत कम पसंद आते हैं। किंतु अपनी व्यक्तिगत रुचि को हिंदी की औसत उपन्यास-प्रेमी जनता पर आरोपित करने का मुझे अधिकार कितना है ?

अब इस उपन्यास की ओर दृष्टि डालिए। आशा इसकी प्रमुख नायिका है। जीवन के आदि प्रहर में वह कुँवर के साथ पत्नी-रूप में संयुक्त होते-होते रह गई है। तदनंतर अवसर आने पर उसका विवाह एक अन्य व्यक्ति के साथ हो जाता है। किंतु दांपत्य जीवन का सुख वास्तव में वह प्राप्त कर नहीं पाती, क्योंकि शीघ्र ही विधवा हो जाती

है। ससुराल में उसे स्थान नहीं मिलता, तभी वह मा के साथ रहने लगती है। जीवन-निर्वाह का कोई उपयुक्त साधन है नहीं। किराए की अदायगी के लिये माल-असबाब की कुर्की होने की नौबत आ जाती है। मकान-मालिक एक युवक है देवेंद्र। वह आशा की रूप-माधुरी का ग्राहक भी है। उसके जाल से रक्षा करने मे सहायक होता है कुबेर। कुबेर विचारशील, सयमी और गभीर प्रकृति का व्यक्ति है। आशा को उसकी मा के साथ वह अपने घर में रख लेता है। सच पूछिए तो उपन्यास का प्रारंभ यहीं से होता है।

कुबेर का छोटा भाई है सुमेर। वह आशा से प्रेम करने लगता है। कुबेर विवेकशील है, सुमेर भावुक। वह विवाहित होता है, तो भी आशा की छवि-छटा के आकर्षण से वह मुक्त न होकर उससे और निबद्ध हो जाता है। आशा पहले सुमेर और फिर देवेंद्र की अंकशायिनी बनती है। घटना-चक्र से वह और भी एक कामुक व्यक्ति जगदीश के अंक-पाश मे आबद्ध होते-होते बचती है। आर्थिक हीनता के कारण सुमेर मे भी परिवर्तन होते हैं। वासना-विदग्ध जीवन से उत्थित होकर भागकर वह नेता बनता है। उधर आशा भी राष्ट्रकर्मिणी के रूप मे रंगमच पर आ जाती है। अंत में कुबेर को अनुभव होता है कि आशा निर्दोष है। सुमेर भी बहुत दिनो बाद उसे मिल जाता है। अनुकूल अवसर देखकर कुबेर आशा को सुमेर के हाथ में

देकर स्वयं देश-सेवा का मार्ग ग्रहण करता है। और बस, यहीं उपन्यास समाप्त हो जाता है। उपन्यास का प्रारंभिक भाग उतना सजीव नहीं, जितना माध्यमिक और अंतिम। किंतु जहाँ तक चरित्रों के पृथक् अस्तित्व का संबंध है, आशा, कुबेर, सुमेर, किरण और देवेंद्र सभी सजीव और सफल हैं। कुबेर आदर्शवादी है, सुमेर यथार्थवादी। आशा आदर्शोन्मुख यथार्थवादी चरित्र है। और, इस उपन्यास में जिस चरित्र ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह आशा ही है।

यदि आशा की सृष्टि के हेतु से देखें, तो यह उपन्यास वास्तव में एक सुंदर कृति है। विधवा होकर भी वह दो व्यक्तियों के जीवन में प्रत्यक्ष रूप से और तीसरे (कुबेर) के जीवन में अप्रत्यक्ष रूप से आती है। किंतु कहीं भी पाठक की संवेदना खो नहीं पाती, वरन् उसे और भी दृढ़ता के साथ ग्रहण करने में समर्थ होती है। और, सच पूछिए, तो मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि उपन्यासकार ने यह एक ऐसा अद्भुत नारी-चरित्र पेश किया है कि यदि उसका आत्मीय संबंध और भी कुछ व्यक्तियों से हो जाता, तो भी वह पाठक की सहानुभूति की सर्वाधिक अधिकारिणी अवश्य बनी रह सकती थी। बहुत दिन हुए, रशियन कलाकार एंटन-चेखाव की एक कहानी मैंने पढ़ी थी। नाम था उसका डार्लिंग। महर्षि टॉल्स्टाय ने इस कहानी को विश्व-साहित्य का एक

सुंदर कलाकृति के रूप मे स्वीकार किया है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए मुझे उसकी याद हो आई। किंतु मेरे कथन का यह अभिप्राय न समझ लिया जाय कि 'कुबेर' की आशा' की सृष्टि का मूलाधार वह कहानी है। उस कहानी की स्थितियों से इस आशा की स्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं। साम्य अथवा अनुकरण नाम की वस्तु मुझे इसमे कहीं देख नहीं पड़ी। इसके सिवा आशा का चित्र उतारने मे लेखक के कौशल की प्रशंसा भी हमे करनी ही पड़ेगी।

उपन्यास की दूसरी विशेषता है उसका अतिशय संक्षिप्तीकरण। गुजराती-उपन्यासकार श्रीरमणलाल देसाई ने इस कला मे बहुत सफलता पाई है। इस उपन्यास मे भी मुझे उसी शैली की छाप देख पड़ी।

इस प्रकार मैं धवनजी को इस उपन्यास की उपर्युक्त सफलता के लिये बधाई देता हूँ। उनमे एक सफल उपन्यासकार होने के यथेष्ट गुण हैं। आशा है, आगे वे इससे भी अधिक सुंदर उपन्यास हमें देते चलेंगे।

दारागंज, प्रयाग
८। २। ४१

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

[१]

युवक चुप था।

माँझी ने कहा—"पार जाना चाहते हो?"

उसका मुँह खुला—"हाँ।"

"तो आओ।" कहकर माँझी ने डाँड़ उठा लिए।

युवक गंभीर भाव से नाव पर चढ़ गया। नाव चलने लगी।

संध्या के झुटपुटे में भी माँझी ने समझ लिया कि युवक आवश्यकता से अधिक चिंतित है।

डाँड़ चल रहे थे, सहसा माँझी कुछ गुनगुना उठा।

"क्या गाना भी जानते हो?" युवक ने पूछा।

"नहीं भैया।" माँझी ने रुककर उत्तर दिया।

"गुनगुना तो रहे थे।"

माँझी चुप।

युवक भी चुप।

डाँड़ चल रहे थे। एकाएक माँझी ने पूछा—"कहाँ जाओगे भैया?"

"रामपुर।"

"रामपुर! क्या मिसरों के यहाँ? वे तो बहुत बड़े आदमी हैं। क्या उन्हीं के यहाँ?"

"हाँ।" कहकर युवक ने उसाँस ली।

"क्या नौकरी चाहिए?"

"नहीं।"

माँझी चुप हो गया। अंधकार बढ़ रहा था। माँझी फिर गुनगुना उठा।

"ज़ोर से गाओ न।" युवक ने कहा।

माँझी ने गाया—

कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?
मिल गए दो तार उर के, हिल गया संसार।
कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

युवक निस्तब्ध था। माँझी गाता गया—

एक आते, एक जाते,
एक निज बीती सुनाते,
भावना की इस परिधि में
एक सब कुछ छोड़ जाते।
यह विकट वैषम्य कैसा ? यह कुटिल व्यापार ?
कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

तट निकट था। माँझी ने कहा—"अब उतरना होगा।"

"रायपुर कितनी दूर होगा माँझी !"

"दो कोस।"

युवक ने एक साँस ली।

"अँधेरी रात के इस निराले में क्या रायपुर पैदल और अकेले चले जाओगे ?'

"जाना ही पड़ेगा माँझी !" कहकर युवक ने एक साँस ली, और निर्दिष्ट मार्ग की ओर चल पड़ा।

माँझी खड़ा रहा—केवल एक क्षण—फिर पुकारा—"ठहरो भैया !"

युवक रुका, और लौटा। माँझी ने कहा—"क्या पहुँचा दूँ रायपुर तक ?"

युवक चुप रहा। माँझी ने कहा—"चलो, तुम्हें पहुँचा दूँ।"

दोनो चल दिए। दोनो ही एक दूसरे से भिन्न थे, किंतु दोनो ही का हृदय एक दूसरे को परस्पर समझ रहा था।

रायपुर के पास पहुँचकर माँझी रुक गया।

"अब चलता हूँ।"

युवक ने मौन कृतज्ञता प्रकट की।

"क्या जाऊँ भैया!" माँझी ने पूछा।

युवक ने सिर हिलाया। माँझी चल दिया।

"किंतु अपना नाम तो बता दो भाई!" युवक ने घूमकर पुकारा।

"मुझे रघुनाथ कहते हैं भैया!" माँझी बोला।

युवक जाने के लिये घूमा।

माँझी ने पुकारकर कहा—"और तुम्हें क्या ... ..."

"मुझे कुबेर कहते हैं माँझी!"

---

[२]

आशा घर में बैठी रो रही थी, और बाहर थी दीवानी अदालत के क्लर्क-अमीन और प्यादों की भीड़।

अमीन ने कर्कश शब्दों में कहा—"काम शुरू करो। अगर रुपए ही देने का ख़याल होता, तो यह दिन ही क्यों देखने को मिलता। चलो, जल्दी करो।"

आशा की वृद्धा मा ने आजिज़ी से कहा—"क्या कल तक भी नहीं ठहर सकते आप लोग ?"

"यह सब तो आप देवेंद्र बाबू से ही कह सकती हैं। मैं भला क्या कर सकता हूँ ? उन्हीं की ख़ुशामद करो।" अमीन ने लापरवाही से कहा।

"तो फिर ठहरिए, मैं उनके पास जाती हूँ।" वृद्धा ने दीनतापूर्वक कहा।

वृद्धा अंदर गई। आशा एक ओर बैठी रो रही थी। वृद्धा ने उसके पास जाकर कहा—"अब क्या होगा आशा ? कुबेर तो अब तक नहीं लौटे। क्या देवेंद्र के पास जाऊँ ?"

"उस पापात्मा और दुष्ट के पास जाने से क्या होगा मा !" आशा ने दुखी होकर कहा।

"फिर और उपाय ? उसी के आगे गिड़गिड़ाने से ही काम चल सकता है। न-जाने कुबेर कब तक लौटें ?"

आशा क्षण-भर चुप रही, फिर खड़ी होकर बोली—"तुम बैठो मा, मैं अभी ठीक करती हूँ।"

आशा फ़ौरन् देवेंद्र के घर की ओर चल दी।

घर पहुँचकर उसने किवाड़ों में धक्का दिया।

"कौन ?"

"मैं हूँ आशा।"

किवाड़ खुल गए। सामने देवेंद्र था। आशा को देखकर उसे आश्चर्य हुआ, किंतु मुस्किराकर बोला—"तुम कैसे आईं आशा ? क्या दुष्टों और निकम्मों से भी मिलने की आवश्यकता आ पड़ी ?"

"यह क्या उत्पात मचा रक्खा है तुमने। क्या दो-चार दिन और नहीं ठहरा जा सकता तुमसे ?" आशा ने कहा।

"दो-चार दिन में ही कौन-सा धन फटने लगेगा तुम्हारे घर में ?" देवेंद्र हँसते हुए बोला।

"माँ ने कुबेर दादा को कहीं से रुपए लाने को भेजा है।"

'कुबेर' का नाम सुन देवेंद्र जी में जल-भुन गया। बोला—"तो क्या कुबेर ही तुम्हारे इतने निकट हो सकते हैं आशा ! मैं तुम्हारे निकट इतना तिरस्कृत क्यों हूँ ?"

"व्यर्थ की बात मत करो देवेंद्र ! बोलो, क्या दो रोज़ का समय और दे सकते हो ?" आशा ने नीचा सिर किए हुए कहा।

"आशा !" देवेंद्र ने और निकट आकर कहा।

आशा चुप रही।

देवेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। आशा छिटककर दूर जा खड़ी हुई।

"होश में रहो देवेंद्र !" आशा ने हाँफते हुए कहा।

"मैं सब कुछ तुम पर न्योछावर कर सकता हूँ आशा ! क्या मुझ पर तुम्हारी कुछ भी कृपा-दृष्टि नहीं हो सकती ?" देवेंद्र ने विरह का नाटक दिखलाते हुए कहा।

"तुम्हारे जैसे पतित भ्रष्ट और दुराचारियों से संबंध रखने की

अपेक्षा में प्राण दे देना ज़्यादा अच्छा समझती हूँ देवेंद्र !" कहती हुई आशा ने बाहर जाने का उपक्रम किया।

"ठहरो, तो फिर कुर्क-अमीन को अपना काम पूरा करने दूँ ?" देवेंद्र ने उस पर एक गहरी दृष्टि डालकर कहा।

आशा चुप रही।

देवेंद्र कहता गया—"कौड़ी की तीन-तीन होकर फिरोगी, तब क्या अच्छा लगेगा ? तुम्हारी मा, उसका क्या ठीक ? आज मरी, कल दूसरा दिन। फिर तुम्हारा क्या होगा ? कभी सोचा भी है ? मैं—मैं तुम्हें—तुमसे विवाह करके तुम्हें सुखी कर सकता हूँ आशा !"

"सँभलकर बात करो देवेंद्र। मैं विधवा हूँ, इस प्रकार की बातें सुनना भी मेरे लिये पाप है। तुम्हारा जो जी चाहे, करो, मैं जा रही हूँ।"

आशा चल दी। देवेंद्र चुपचाप खड़ा रहा।

❀ ❀ ❀

उस दिन कुर्की नहीं हुई। देवेंद्र ने दो दिन की मुहलत दे दी। वह इतनी जल्दी निराश होनेवाला न था।

---

[३]

रायपुर एक अच्छी-नामी छोटी-सी रियासत थी। वैसे तो आमदनी कुछ अधिक न थी, किन्तु पं० रामनाथजी ने अपने सतत उद्योग से उसे कामधेनु बना रक्खा था। प्रतिवर्ष हज़ारों रुपए सूद के रूप में आते थे किन्तु फिर भी सारी रियासत उन्हें दीन-प्रतिपालक तथा ग़रीबपरवर समझती थी। उनके व्यवहार का ढंग ही कुछ ऐसा निराला था कि घर-बाहर सभी लोग उनसे संतुष्ट थे। पुरानी चाल-ढाल थी, लेकिन पूरी शान-शौकत के साथ। दरवाज़े पर तीन-तीन हाथी झूमते थे, परन्तु मोटर ख़रीदने का कभी प्रश्न ही नहीं उठा। उनके दरवाज़े से कभी कोई विमुख नहीं लौटा। उनका विशाल भवन परिवार के पचीसों व्यक्तियों के लिये आश्रय का स्थान था।

पं० रामनाथ के दो पुत्र थे और एक कन्या। कन्या सबसे बड़ी थी, उसका विवाह कानपुर के पं० रामाधार के एक-मात्र पुत्र रामधन के साथ हुआ। भाग्य-चक्र में पड़कर पं० रामाधार का सर्वस्व स्वाहा हो गया, और दो वर्ष के भीतर ही आर्थिक दुःखों से सन्तप्त पिता-पुत्र दोनों ही चल बसे। सौभाग्य-वश पं० रामनाथ का देहान्त इस घटना से एक वर्ष पूर्व ही हो चुका था।

पं० रामनाथ के स्वर्गवास के बाद उनके बड़े पुत्र पं० रुद्रनाथ के कंधों पर सारा बोझ आ पड़ा। वह विचित्र स्वभाव के व्यक्ति थे। विद्या से अधिक विद्वान्, बुद्धिमान तथा धर्मात्मा थे, किन्तु

पिता के चरित्र की महत्ता से पूर्णरूपेण वंचित थे। उनके व्यवहार में ओछापन था। उनकी इसी कूट-नीति के फल-स्वरूप उनके आश्रित परिवारवाले अपमान न सहन करने के कारण एक-एक करके वहाँ से खिसक गए, यहाँ तक कि पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने कभी अपनी दुखी बहन की सुधि भी न ली। उन्हें अपने निर्धन संबंधियों से मिलते लज्जा आती थी। बहन से तो उन्होंने पूर्ण विच्छेद ही कर रक्खा था। पं० रामनाथ की वह विधवा कन्या ही पूर्व-कथित आशा की मा है।

धीरे-धीरे पूरी रियासत में भारी परिवर्तन हो गया। प्राचीन अट्टालिका के स्थान पर विशाल महल बनकर तैयार हो गया। हाथी बेच डाले गए, उनके स्थान पर भारी-भारी चार मोटरें ख़रीद ली गईं। गाँव में लेन-देन बंद करके शहर के बैंकों में लाखों के खाते खोल दिए गए। आमदनी ख़ूब बढ़ रही थी, किंतु ख़र्च कम था, और वह भी ख़ूबसूरती के साथ। अपनी शान-शौकत में लाखों ख़र्च किए जाते, किंतु बुद्धिमानी के साथ। कहने का तात्पर्य यह कि नरेंद्रनाथ बड़ी अकड़ और आन-बान के आदमी थे। अपनी अकड़ रखने के लिये अपने सगे-से-सगे को छोड़ सकते और उसे दुनिया से नेस्तोनाबूद भी कर सकते थे।

छोटे भाई महेंद्रनाथ में भाई की-सी विशालता न थी। उनके चरित्र में दृढ़ता का अभाव था। वह भाई के हाथों की कठपुतली थे, और नरेंद्रनाथ की निंदनीय-से निंदनीय नीति का विरोध करने की उनमें शक्ति न थी। वह स्वभाव के उल्लू, कजूस और विश्वास न करने योग्य व्यक्ति थे। अपने ऊपर अत्याचार होते हुए भी उसका विरोध न कर सकते थे।

राजा नरेंद्रनाथ (सरकार उन्हें इस उपाधि से विभूषित

कर चुकी थी) का दरबार लगा हुआ था । लोग यथा-स्थान बैठे थे । शान शौकत में किसी बात की कमी न थी । ऐसे लोगों का भी एक समाज था, जो बड़े आदमियों की चाटुकारिता को ही अपने जीवन का साफल्य समझते हैं । बड़े आदमी उन्हें जानते हैं, उनसे बोलते हैं, उनकी खिल्ली उड़ाते हैं, उन्हें अपनी थाली की जूठन खाने को दे देते हैं, बस, यही सब कुछ उनका सौभाग्य है । बड़े आदमी चाहे काम पड़ने पर उन्हें टका-सा जवाब दे दें, किंतु वे सदैव उनकी जूतियाँ बनवाने के लिये अपने शरीर की खाल प्रस्तुत रखते हैं । धनवान् ही उनके प्रभु हैं, चाहे मारें, चाहे जिलाएँ, किंतु वे उपासना से न डिगेंगे ।

सोने की मुँहनाल होठों से लगाए राजा नरेंद्रनाथ भकाभक धुआँ उड़ा रहे थे कि दरबान ने आकर कहा—"सरकार, कोई मिलना चाहता है ।"

क्षण-भर चुप रहकर नरेंद्रनाथ ने कहा—"बुलाओ ।"

दरबान चला गया । नरेंद्रनाथ ने मुखाकृति और गंभीर कर ली । थोड़ी देर में दरबान के साथ कुबेर ने आकर उनका अभिवादन किया ।

"कहिए, क्या आज्ञा है ?" नरेंद्रनाथ ने बैठे-ही-बैठे पूछा ।

"मैं कानपुर से आ रहा हूँ ।" कुबेर ने कहा ।

"हूँ ।" कहकर नरेंद्रनाथ चुप हो गए ।

कुबेर भी चुप ।

"तो मेरे लिये कोई काम सेवा है ? वहाँ सब लोग कुशल से हैं न ?" नरेंद्रनाथ ने पूछा ।

कुबेर को थोड़ी शांति मिली । उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"जी हाँ, इस समय आपकी बहन और भांजा कुछ संकट में हैं, फलतः उन्होंने मुझे आपकी सेवा में भेजा है ।"

नरेंद्रनाथ कुछ गंभीर होकर चुप हो गए। कुबेर उनके मुँह की ओर देखते रहे।

क्षण-भर चुप रहकर नरेंद्रनाथ ने कहा—"क्या संकट है? कुछ रुपया चाहिए क्या?"

"जी—जी हाँ। इस समय उन्हें यदि कुछ धन की सहायता न मिली, तो उनका सर्वनाश हो जायगा। इसीलिये उन्होंने मुझे श्रीमान् के पास भेजा है।" कुबेर ने कह डाला।

"हूँ।" कहकर नरेंद्रनाथ चुप हो गए।

कुबेर कहते गए—"आशा और उसकी मा पर ऐसी विपत्ति आ पड़ी है कि यदि दो-तीन दिन में आर्थिक सहायता न मिली, तो उन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ेंगी।"

"आप उनके संबंधी हैं?" नरेंद्रनाथ ने पूछा।

"जी नहीं, मैं तो उनके पड़ोस में रहता हूँ। उन्होंने आपके नाम एक पत्र भी दिया है।" कहते हुए कुबेर ने जेब से एक पत्र निकालकर उनके सामने रख दिया।

नरेंद्रनाथ ने लापरवाही से पत्र उठाकर आद्योपांत पढ़ा, फिर बोले—"अच्छा, अब आराम करें, रात को फिर मुझसे भेंट होगी।" (नौकर से) "नरायन! आपको आराम के साथ ठहराओ, और खाने पीने की व्यवस्था करो।"

कुबेर नरायन के साथ चले गए। नरेंद्रनाथ घंटे-भर तक चुप बैठे सोचते रहे, फिर उठकर अंदर चले गए।

कुबेर नहा-धोकर भोजन करने के बाद चारपाई पर लेटकर आराम करने लगे। उनके हृदय में पूर्ण आशा घर कर गई थी कि आशा की विपत्ति दूर होगी, किंतु उन्हें इस देर का पल-पल भारी मालूम पड़ रहा था। उन्होंने सोचा, इतने बड़े आदमी, और बहन इस बुरी अवस्था में! इतना

तो नौकर-चाकर ले जाते होंगे। अजब दुनिया की हालत है।

शाम के वक्त कुबेर उठे। नौकर ने कहा—"जल-पान लाऊँ?"

"नहीं भाई, कुछ इच्छा नहीं।" कुबेर ने अँगड़ाई लेते हुए कहा।

"सुनिए, कोई तकलीफ़ न उठाइएगा, नहीं तो मालिक मुझ पर बहुत नाराज़ होंगे।" नौकर ने हाथ जोड़कर कहा।

"नहीं भाई, कोई तकलीफ़ नहीं। मालिक तो आराम कर रहे होंगे? कै बजे भेंट होगी?" कुबेर ने पूछा।

"मालिक! कौन? बड़े या छोटे?" नौकर ने पूछा।

"बड़े।"

"बड़े, वह तो आज दोपहर की गाड़ी से कलकत्ते चले गए। आपको नहीं मालूम?" नौकर ने आश्चर्य पूछा।

"चले गए? कब लौटेंगे?" कुबेर ने स्तंभित होकर पूछा।

"अजी, उनका क्या ठीक। वह राजा हैं, जब मौज में होगी, लौटेंगे। फिर महीने-दो महीने से पहले तो लौटते भी नहीं।" नौकर ने उत्तर दिया।

कुबेर सुस्त होकर चुप रहे। नौकर चला गया।

कुबेर सोचने लगे, क्या बड़े आदमियों की यही सभ्यता है? छि! यदि सहायता नहीं करना था, तो साफ़ कह देते। वाह रे ज़माने! भाई के साथ यह छल? और... ...शायद अपने छोटे भाई से कुछ कह गए हों। ठीक, ऐसा भी हो सकता। अपने छोटे भाई से रुपए देने के लिये कह गए होंगे। इतनी छोटी-सी बात के लिये क्या इनकार करते? हाँ, तो अब उनसे ही मिलना चाहिए।

कुबेर उठकर बाहर आए। उनके हृदय में एक विचित्र प्रकार

की उलझन थी। बाहर नौकर से उन्होंने कहा—"ज़रा छोटे सरकार से मिलना है।"

"बहुत अच्छा।" कहकर नौकर चला गया।

थोड़ी देर में नौकर आकर उन्हें महेंद्रनाथ के पास ले गया।

वह चारपाई पर लेटे थे, कुबेर को देखकर, उठकर बैठ गए। मुस्किराकर बोले—"आइए।"

कुबेर सामने की कुर्सी पर बैठ गए। "अजी, इधर आइए। आप तो तकल्लुफ़ करते हैं।" कहते हुए महेंद्रनाथ ने उन्हें खींच-कर पलँग पर बिठा लिया।

"कहिए, यहाँ कुछ कष्ट तो नहीं है आपको? अरे बुधुआ, पान तो ले आ।" कहते हुए महेंद्रनाथ ने अटूट आत्मीयता प्रकट की।

क्षण-भर चुप रहकर कुबेर ने कहा—"क्या बड़े सरकार कलकत्ते चले गए?"

"जी हाँ, इधर बहुत दिनों से कहीं घूमने-घामने नहीं निकले थे, अतएव आज दोपहर की गाड़ी से कलकत्ते चले गए। वहाँ से पुरी चले जायँगे।" महेंद्रनाथ बोले।

थोड़ी देर तक कुबेर चुप रहे, फिर बोले—"मेरे विषय में तो आपसे अवश्य कुछ कह गए होंगे?"

"आपके विषय में? नहीं तो, मुझसे कुछ नहीं कह गए।" महेंद्र-नाथ ने आश्चर्य की मुद्रा दिखलाते हुए कहा।

कुबेर को धक्का लगा। महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते हुए बोले—"क्या बात थी? क्या कुछ उन्हें आपसे कहना था?"

"वही, जो कानपुर से पत्र लाया था, उसी के संबंध में उन्होंने आज रात को जवाब देने के लिये कहा था।" कुबेर ने टूटे-से हृदय से कहा।

"अच्छा, वह डीडीवाला पत्र। पर मुझसे वह कुछ नहीं कह गए।" महेंद्रनाथ ने धीरे से कहा।

दो मिनट तक कुबेर भी मौन रहे और महेंद्रनाथ भी। अंत में धीरे से कुबेर ने कहा—"तो क्या आप अपनी बहन की कुछ मदद नहीं कर सकते? वह इस समय बड़े कष्ट में हैं। कुल चार-पाँच सौ रुपयों की बात तो है ही। आपके लिये इतना रुपया क्या चीज़ है?"

क्षण भर चुप रहकर महेंद्रनाथ बोले—"किंतु बिना भाई साहब की आज्ञा के कुछ कर सकना बहुत कठिन है।"

साहस करके कुबेर ने कहा—"किंतु वह आपकी भी तो बहन हैं।"

हाँ-हाँ करके महेंद्रनाथ बोले—"सो तो ठीक है, किंतु यह सब भाई साहब ही करते हैं। वह लौटकर आ जायँ, तो आपका काम हो सकता है।"

बात काटकर कुबेर ने कहा—"किंतु उनका तो आज और कल के बीच में सर्वनाश हो जायगा। फिर यदि सहायता मिल भी गई, तो उससे क्या होगा?"

महेंद्रनाथ ने फिर कुछ नहीं कहा। कुबेर को नरेंद्रनाथ से भी ज़्यादा महेंद्रनाथ पर घृणा हुई।

थोड़ी देर में कुबेर उठ खड़े हुए, और बोले—"अच्छा, तो आज्ञा दीजिए, चलता हूँ।'

"जाइएगा? अच्छा। देखिए, आपको मोटर पर नदी-तट तक पहुँचा देता हूँ।" महेंद्रनाथ ने उठते हुए कहा।

"इस कृपा की कोई आवश्यकता नहीं। जैसे आया था, वैसे ही चला जाऊँगा।"

लीला करके महेंद्रनाथ चुप हो गए। कुबेर बाहर आए। महेंद्रनाथ भी उनके पीछे-पीछे बाहर तक आए।

"अच्छा, चलता हूँ।" कहकर कुबेर चल दिए।

चलते-चलते कुबेर के हृदय मे एक बार फिर दोनो भाइयों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हुई। किंतु उस बेचारे को नहीं मालूम कि यह भी बडे आदमियों के दरबार की एक लीला-मात्र है।

❀ ❀ ❀

कुबेर पैदल नदी-तट पर पहुँचे। उन्हें मालूम ही नहीं पड़ा कि कब रास्ता तय हो गया। वह ध्यान-मग्न थे, सहसा उन्हें सुनाई दिया—

कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?
मिल गए दो तार उर के, हिल गया संसार।

...

कुबेर ने आवाज़ दी—"रघुनाथ !"

माँझी ने स्वर पहचाना। ऊँची आवाज़ से बोला—"आता हूँ कुबेर दादा।"

कुबेर नौका पर सवार हो गए। माँझी ने डाँड़ चलाना प्रारंभ किया। कुछ देर मौन रहकर कुबेर ने कहा—"गा रहे थे! गाओ न ?"

माँझी ने गाया—

एक आते, एक जाते,
एक निज बीती सुनाते;
भावना की इस परिधि में
एक सब कुछ छोड़ जाते।
यह विकट वैषम्य कैसा ? यह निठुर व्यापार ?
कैसी प्रीति ? कैसा प्यार ?

कुबेर मौन थे। माँझी ने कहा—"क्या काम नहीं हुआ भैया ?"

कुबेर ने सिर हिला दिया।

माँझी चुप।

कुबेर चुप।

क्षण-भर बाद माँझी ने पूछा—"क्या बड़ी विपत्ति में हो भैया?"

कुबेर चुप रहा।

माँझी फिर बोला—"क्या अपना समझकर मुझे भी अपने दुःख में शामिल कर सकते हो?"

कुबेर का हृदय भरा हुआ था। उसने सब कुछ माँझी के सामने उँडेलकर रख दिया।

माँझी ने एक साँस लेकर कहा—"ऐसा ही ज़माना है भैया! पूछो, भाई और बाप क्या ग़ैर हैं।"

कुबेर चुप।

माँझी चुप।

माँझी ने बहुत कुछ सोच विचार के बाद कहा—"बहुत थके हो, रात भी हो रही है, आज मेरी कुटिया को पवित्र करो कुबेर दादा! सबेरे तड़के पार पहुँचा दूँगा।"

कुबेर थका और भूखा था। चुप रह गया। माँझी ने अपनी कुटिया की ओर नौका घुमा दी।

कुबेर मौन बैठा रहा।

[४]

कुबेर के न आने से आशा को आशा से अधिक निराशा हुई। इधर देवेंद्र आफ़त किए हुए था। वह कई बार आशा के पास आया, और अपना मंत्र फूँकने की चेष्टा की, किंतु बुरी तरह झिड़कियाँ खाकर लौटा। लेकिन वह साधारण रूप से पीछा छोड़नेवाला न था। उसे पूर्ण रूप से आशा थी कि आशा उसके रुपए नहीं चुका सकती, और उसे एक दिन मेरी होना पड़ेगा। उसे क्या मालूम था कि आशा उससे मिलने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसंद करती है।

संध्या को उसने किरण के पास जाकर कहा—"क्यों दीदी, कुबेर दादा अभी तक नहीं आए?"

किरण भीतर-ही-भीतर कुढ़ी हुई थी, किंतु ऊपर से प्रसन्नता दिखलाती हुई बोली—"हाँ, आए तो नहीं। तुम्हारा काम ठहरा, भला, बिना ख़त्म किए आ सकते हैं।"

आशा सब कुछ समझती थी। वह किरण के हृदय का हाल जानती थी, अतएव एक छिपी हुई श्वास लेकर रह गई। वह जाने ही वाली थी कि सामने से सुमेर ने आकर किरण से कहा—"भाभी, कुबेर दादा तो मानो जाकर वहीं बैठ गए!"

आशा ठिठककर खड़ी हो गई।

किरण ने मुँह बनाकर कहा—"अरे भाई, मैं क्या उनकी ठेकेदार हूँ। पूछना हो, तो आशा रानी से पूछो।"

सुमेर ने मुसिकराकर आशा की ओर देखा। आशा लजाकर चल दी।

सुरेश खड़ा रह गया।

किरण ने बड़बड़ाना प्रारम्भ किया—"जिस-तिस के झगड़े में पड़ते फिरते हैं। सौ-पचास की नौकरी लगी हुई है, सो इन्हीं कर्मों से तो छूटेगी। अपना पेट भरकर दूसरों के पेट की तरफ देखा जाता है। पूछो भला!"

सुरेश ने मुस्कराकर कहा—"तुम डाँटती भी तो नहीं हो भाभी इन्हें। गुस्सा? काम छोड़कर दूसरों का काम करते फिरते हैं। एक लम्बी-सी डाँट बता दो न एक दिन। मैं तुम्हारी तरफ रहूँगा भाभी!"

मुँह बिचकाकर किरण बोली—"तुम सब एक-से हो। न-जाने कहाँ-कहाँ से आकर बसे हैं इस मुहल्ले में लोग। 'देश का मुरदा और नानामऊ का घाट।'"

सुरेश चला गया, किन्तु शीघ्र ही लौटकर बोला—"अरे! देखो भाभी, चाचा के दरवाज़े पर कितनी भीड़भाड़ इकट्ठी है। मालूम पड़ता है, मुए देवेन्द्र आज फिर कुर्की डिग्री लेकर पहुँच गया। अब क्या होगा भाभी? भैया तो आए नहीं।"

किरण फौरन् खिड़की पर आई। उसने देखा, देवेन्द्र भीड़भाड़ लिए चाचा के दरवाज़े पर डटा हुआ है। उसका जी धड़कने लगा।

देवेन्द्र गरज रहा था—"न, अब कुछ न सुना जायगा। या तो रुपया दो, नहीं तो आज मैं खाली न लौटेंगे। बहुतेरा समझा लिया है। कई बार लौट गया हूँ, अब न लौटूँगा।"

[illegible] खड़ी थीं। चाची दौड़कर, किरण के पास आ फूट-फूटकर रोने लगीं।

सुरेश ने उन्हें धीरज दिलाते हुए कहा—"घबराने की बात नहीं

आशा ! तुम लोग हमारे घर चली आओ, ले जाने दो दुष्ट को, जो कुछ ले जाना चाहे।"

आशा ने सहानुभूति-भरे नेत्रों से सुमेर की ओर देखा। सुमेर ने आँखें नीची कर लीं, और बाहर चला गया।

सामान बाहर निकाला जा रहा था, वृद्धा आँसू बहाती हुई एक ओर खड़ी देख रही थी।

देवेंद्र ने कहना शुरू किया—"आप ही लोग बतलाइए कि आख़िर इसमें मेरा क्या कुसूर। पूछिए, मकान में रहेंगे, और बरसों उसका किराया भी न देंगे। आख़िर कहाँ तक रुका जा सकता है? मैं तो सब कुछ करने को तैयार हूँ, पर . .."

"आप बहुत ठीक कह रहे हैं, लेकिन अब उन सब बातों की ज़रूरत नहीं।" कुबेर ने देवेंद्र के सामने खड़े होते हुए कहा।

अपने सामने एकाएक कुबेर को देखकर देवेंद्र एकदम सहम-सा गया, किंतु शीघ्र ही सँभलकर बोला—"मुझे तो रुपया .. .."

बात काटकर कुबेर ने कहा—"हाँ, तुम रुपया ही लो। बोलो, कितना हिसाब है? जल्दी करो, मुझे फ़ुरसत नहीं।"

कुबेर ने रुपए चुका दिए।

देवेंद्र की आशाओं पर पानी फिर गया, वह चुपचाप रुपए लेकर चला गया।

वृद्धा ने गद्गद होकर कुबेर की पीठ पर हाथ फेरा, और कहा—"तुम बड़े भले लड़के हो बेटा। वहाँ तो सब कुशल से हैं न, मेरे नरेंद्र और महेंद्र?"

कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"सब ठीक है। कोई चिंता की बात नहीं।"

आशा ने आकर पूछा—"कितने रुपए दिए मामाजी ने आपको कुबेर दादा?"

सब भुगतना पड़ता है। नहीं मानोगे, तो एक दिन पछताना पड़ेगा।" किरण ने उदास होकर कहा।

कुबेर उठकर बाहर चले गए। किरण पैर पटककर घर के काम में जुट गई।

❀ ❀ ❀

कुबेर उच्च कुलीन ब्राह्मण थे, और थे साधारण श्रेणी के आदमी। एक स्थानीय दफ्तर में १००) मासिक पाते थे। पूर्वजों ने संपत्ति के नाते वही मकान छोड़ा था, जिसमें वह रहते थे।

कुटुंब में केवल उनकी स्त्री और छोटे भाई सुमेर को छोड़कर और कोई न था। सुमेर की अवस्था इस समय बीस वर्ष की थी, और वह बी० ए० का छात्र था। देखने में सुंदर, अच्छे स्वभाव का और भाई का आज्ञाकारी था।

कुबेर मनोविज्ञान के विद्यार्थी थे। उनका अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने और दूसरों की सहायता करने में व्यतीत होता था। मनोविज्ञान का विद्यार्थी साधारणतया ढुलमुल स्वभाव का होता है, और यही दशा कुबेर की भी थी। वह कोलाहल से दूर रहते और प्रत्येक बात को साधारण महत्त्व के साथ देखने के आदी थे। उनमें सक्रियता का अभाव था, और यही कारण था कि वह असफल जीवन व्यतीत करने में पटु थे। किरण उन्हें प्रत्येक बात के लिये लताड़ती, किंतु उनके स्वभाव में वह इंच-भर भी परिवर्तन न ला सकी। वह सबकी शिकायतें सुनते, उसके महत्त्व से अवगत होते और बाद में उन्हें हँसकर उड़ा देते। वह संसार की कुछ बड़ी समस्याओं की ओर झुकना चाहते थे, किंतु दो बातें उनके मार्ग में बाधक थीं। एक तो नौकरी और दूसरी उनकी अकर्मण्यता।

किरण चावल राँध रही थी, और पास बैठी हुई आशा सिल

करना चाहता था, किंतु कुबेर के पिता राज़ी होते हुए भी अधिक रुपया चाहते थे। आशा के पिता की उस समय आर्थिक स्थिति ज्यादा अच्छी न थी, अतएव विवाह न हो सका। कुबेर और आशा, दोनो ही के दिल टूट गए। थोड़े दिन बाद कुबेर का भी विवाह हो गया, और आशा का भी। कुबेर ने किरण को लेकर संतोष किया, किंतु आशा के भाग्य शीघ्र ही फूट गए। ये पुरानी स्मृतियाँ आज एकाएक आशा के हृदय में जाग्रत् हो उठीं।

"तुम आशा के मामा को तो जानती ही हो। वही, जिनके यहाँ मैं कुछ मास पूर्व आशा के लिये रुपए माँगने गया था। उन्हीं की लड़की है।"

"अरे, रज्जो!" आशा के मुँह से निकला।

"हाँ, राजा नरेंद्रनाथ की लड़की। उन्हीं के छोटे भाई तो बाहर बैठक में बैठे हैं।"

"ना बाबा, मैं उनके यहाँ अपने सुमेर का विवाह न करूँगी। जो शख्स अपनी बहन भाजी का नहीं हुआ, वह किसका हो सकता है?" किरण ने क्षण-भर विचारकर कहा।

"नहीं भाभी, लड़की बड़ी अच्छी है। तुम चूको मत सुमेर दादा की अच्छी जोड़ी रहेगी।" आशा ने कहा।

"अरे कुबेरचंद्रजी, क्या करने लगे अंदर?" कहते हुए शिवनंदन पुरोहित अंदर आ गए।

"आइए, देखिए, इन्हें न-जाने क्या हुआ है, जो भाँजी मार रही हैं।" कुबेर ने हँसते हुए कहा।

"अरे बेटी, मैंने बड़ी मुश्किलों से विवाह तय किया है। राजा हैं वे लोग, राजा! और दो भाइयों के बीच में यही तो एक संतान है। सुमेर तो राजा होगा, राजा।" पुरोहितजी ने किरण को लक्ष्य करके कहा।

किरण राजा के नाम से पिघल गई। बोली—"हमें कुछ इनकार थोड़े ही है। लेकिन सुना है, आदमी अच्छे नहीं हैं।"

"अरी पागल, आदमी लाखों में अच्छे हैं। घर भर जायगा बेटी। कुबेरचन्द, आओ, चलो।"

पुरोहितजी कुबेर को लेकर बाहर चले गए।

---

[५]

सुमेर का विवाह ठीक हो गया। चलते समय महेंद्रनाथ ने कुबेर को १०००) भेंट किए। कुबेर ने चुपचाप रुपए लेकर अंदर भेज दिए।

चलते समय महेंद्रनाथ ने कहा—"मुझे याद आता है, मैंने कहीं आपको पहले भी कभी देखा है।"

"देखा होगा।" कहकर कुबेर ज़रा मुस्किरा दिए।

महेंद्रनाथ उनका मुँह देखते रह गए। जाते समय आशा ने भी छिपकर अपने मामा के दर्शन कर लिए।

महेंद्रनाथ लौट गए।

शाम को आशा नाश्ते की तश्तरी लेकर सुमेर के कमरे में गई। सुमेर कॉलेज से अभी लौटा था।

आशा ने तश्तरी मेज़ पर रखते हुए कहा—"आज तो मिठाई खिलाओ सुमेर दादा।"

"कैसी मिठाई आशा?" सुमेर ने उसकी ओर मुस्किराकर कहा।

आशा झेंप गई। उसके चेहरे पर पसीना आ गया। वह जाने लगी।

"सुनो आशा।" सुमेर ने पुकारा।

आशा रुकी नीचा सिर किए हुए। कहने को तो वह कह गई थी, किंतु अब उसे अधिक बात करते हुए लज्जा आ रही थी।

"बताओ, क्या हुआ?" सुमेर ने उसके और निकट आकर कहा।

आशा चुप। उसके पसीना आ रहा था, और लज्जा से उसके

गाल लाल हो रहे थे। सुमेर ने उनमें अपूर्व सौंदर्य देखा, और पहली ही बार।

"बताओ न?" कहकर सुमेर ने उसका एक हाथ पकड़ा।

आशा हाथ छुड़ाकर दरवाज़े के पास आ गई, और बोली—"आपका विवाह तय हुआ है न?"

और वह भाग गई।

सुमेर स्तब्ध खड़ा रहा। इस घटना ने उसे ऐसा बना दिया कि वह अपना विवाह भी भूल गया।

"आशा इतनी सुंदर है? किन्तु छि! क्या मुझे ऐसी बात सोचना चाहिए। बेचारी विधवा है और दुखी। किन्तु आज सहसा उसे हो क्या गया। आज अचानक ऐसी घटना हो क्यों गई। मैं उसका जीवन नष्ट न होने दूँगा। उसे समझाऊँगा, और उसे पथ-भ्रष्ट न होने दूँगा। मैं तो . . . ..."

फिर आशा ने कमरे के दरवाज़े पर खड़े होकर कहा—"भाभी आपको बुला रही हैं।" और वह चल दी।

सुमेर ने फिर एक बार उसे देखा, और अनुमान लगाया कि आशा अवश्य भीतर-ही-भीतर उससे प्रेम करती है। उसने उसे इस ओर से हटाने का दृढ़ निश्चय किया। वह कुरसी पर बैठकर सोचने लगा।

और, आशा वास्तव में बहुत सुंदरी थी। वह किसी के भी घर की शोभा बढ़ाने योग्य थी, किन्तु भाग्य ने उसका साथ न दिया।

कमरे से चल देने पर करुण आशा पलंग पर लेटकर सोचने लगी, क्या कहते होंगे वह अपने दिल में? क्या मेरा यहाँ आना ठीक हुआ। छि! मुझे धीरज धरना चाहिए था। हे भगवान! यह क्या हो गया? क्यों मैंने उनके हृदय में अपने लिए स्थान उत्पन्न कर दिया होगा! 'हे ईश्वर रक्षा करो' कहकर

आशा रो दी । बाहर से किसी ने किवाड़ खटखटाए। "यह भी क्या सोने का वक़्त है । चल, तेरी भाभी तुझे बुला रही है।" आशा की मा बोली।

आशा बाहर निकलकर आँगन में आ गई। सामने किरण बैठी सुमेर को तंग कर रही थी। आज न-जाने क्यों आशा को सुमेर के आगे आने में लज्जा-सी मालूम पड़ने लगी।

"देखो आशा ! अब यह मिठाई खिलाने में कन्नी काट रहे हैं।" किरण ने हँसकर कहा।

आशा की लज्जा थोड़ी दूर हुई । बोली—"मिठाई क्यों नहीं खिला देते, सुमेर दादा ?"

सुमेर ने मुस्किराकर कहा—"अच्छी आफ़त है भाई। सभी मेरे ख़िलाफ़ मिलकर एक हो गए हैं । जाओ, मैं विवाह नहीं करता।"

"मगर बातों से काम न चलेगा। मिठाई न खिलाओगे, तो कान ऐंठे जायँगे।" किरण ने ओंठ दबाकर कहा।

"यह ख़ूब रही। रुपए उठाकर आपने रख लिए, और मिठाई मैं खिलाऊँ। ऐसे बुद्धू शिकारपुर में बसते होंगे।" सुमेर ने उत्तर दिया।

"अच्छा, अभी से ससुराल के माल पर नीयत गड़ने लगी। 'सूत न कपास, कोरियों से लट्ठम लट्ठा।'" किरण ने ज़रा मुँह बनाकर कहा।

"क्या है भाई, उसे क्यों तंग कर रही हो ?" कहते हुए कुबेर ने प्रवेश किया।

सुमेर झेंपकर बाहर भाग गया।

कुबेर ने किरण को आड़े हाथों लेते हुए कहा—"तंग करने लगी न लड़के को । इतना सीधा-सादा है, इसीलिये बना

"तुम तो नाराज़ हो जाती हो। अच्छा सुनो, आज से विवाह के पचीस-छब्बीस दिन हैं। अभी पुरोहितजी ने बतलाया है। आज वह उन्हें चिट्ठी लिख रहे हैं।" कुबेर ने कहा।

"तब तो जल्दी तैयारी करनी चाहिए। तुम तो हर काम में ढील डालने के आदी हो। भगवान् जाने, नाक रहेगी या कटेगी।" किरण बोली।

"सब हो जायगा। तुम तो घबरा उठती हो बड़ी जल्दी। मेरा काम मिनटों में होता है।" कुबेर ने हँसकर कहा।

"होता है। बड़े काम करनेवाले।" किरण बोली।

"अच्छा, देख लेना। वह ठाठ रहेगा कि लोग देखते रह जायँगे। हाथी, घोड़े, ऊँट, सभी तो रहेंगे। आगे-आगे हाथी पर चढ़कर तुम्हें चलना पड़ेगा। बोलो, राज़ी हो न?" कुबेर ने हँसते हुए कहा।

"तुम्हें बातें बहुत बनाना आती हैं। हर बात मज़ाक़ में उड़ा देना ख़ूब सीखा है। चलो रहने दो।" किरण बिगड़कर बोली।

"अच्छा, लाओ, भोजन तो दो। कोरी बातों से तो पेट भरेगा नहीं।"

❀ ❀ ❀

एकांत में आशा को पाकर सुमेर ने कहा—"उस दिन कुछ बुरा तो नहीं मान गईं आशा?"

आशा जाने लगी। सुमेर ने उसे रोककर कहा—"बात क्यों नहीं करतीं, क्या कुछ नाराज़ हो?"

"मुझे जाने दीजिए। मैं क्यों नाराज़ होने लगी।" कहकर आशा चली।

सुमेर ने उसका हाथ पकड़ लिया, और बोला—"इस तरह भागने से काम न चलेगा मुझे तुमसे कुछ बातें करना है।"

मार्ग गलत है आशा ! किंतु कुछ कह भी तो न सका। शायद उसे कोरा उत्तर सुनने में कष्ट हो। किंतु फिर क्या किया जाय। मेरा और उसका मिलना ही अनुचित है। मै अवश्य उससे स्पष्ट बात करूँगा। अच्छा हो, यदि मैं ही कुछ दिनों के लिये कहीं चला जाऊँ।

बहुत कुछ सोच-समझकर सुमेर ने भाई से कहा—"कुछ दिनों के लिये बाहर चला जाऊँ दादा। कल से कॉलेज भी गर्मियों की छुट्टी के लिये बंद हो रहा है।"

कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"अब तो विवाह के सोलह ही रोज रह गए हैं। कैसे जा सकोगे ?"

"मैं आठ-दस रोज़ मे लौट आऊँगा। ज़रा तबियत बहल जायगी।" सुमेर नीचा सिर किए हुए बोला।

"जैसी तुम्हारी मर्ज़ी। मगर लौट आना जल्दी। मैं अकेला ही हूँ।" कुबेर ने कहा।

सुमेर ने जाने की तैयारी कर दी। जाने से थोड़ी देर पूर्व वह आशा को देखने के लिये कुछ उद्विग्नता अनुभव करने लगा। आशा ने समझा, वह मुझसे रुष्ट होकर जा रहे हैं। कहीं ऐसा न हो, वह विवाह के समय तक न लौटें।

उसने भी सुमेर से मिलना निश्चित किया। सुमेर के कमरे में पहुचकर उसने कहा—"आप बाहर जा रहे हैं ?"

"हाँ।"

"क्यो ?"

"यो ही, ज़रा तबियत बहलाने।"

"तो क्या यहाँ तबियत नहीं लगती आपकी ?"—आशा ने दाँतों से जीभ दबाकर कह डाला।

सुमेर चुप रहा। आशा ने फिर कहा—"किंतु विवाह के समय क्या आपका इस प्रकार जाना अच्छा लगता है ?"

सहसा सुमेर के मुँह से निकल गया—"मजबूरी।"

आशा को चोट लगी। मैंने इन्हें निराश किया है, इसीलिये शायद जा रहे हैं। अब शायद त्योहार पर नहीं लौटेंगे। उसने सोचा।

सुमेर चुप बैठा रहा। न-जाने क्यों आशा को देखते ही उसका हृदय कैसा हो जाता था।

आशा ने कहा—"मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, आप बाहर न जायँ।"

सुमेर उठकर आशा के निकट आया। आशा हटी नहीं। सुमेर ने आशा का हाथ पकड़कर कहा—"मेरा चला जाना ही ठीक है आशा।"

आशा के शरीर में बिजली दौड़ गई, उसने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"हाँ ठीक है। आपका चला जाना ही अच्छा है।"

सुमेर को इस उत्तर की आशा न थी। वह चुप हो गया। आशा थोड़ी देर तक खड़ी रही, फिर चल दी।

दरवाजे के पास पहुँचते-पहुँचते उसने कहा—"त्योहार के पहले ही लौटेंगे न?"

"हाँ।" कहकर सुमेर चुप हो गया।

आशा एक निःश्वास लेकर चली गई।

उसी दिन रात की गाड़ी से सुमेर बनारस चला गया।

---

[६]

सुमेर का विवाह हो गया। राजा महेंद्रनाथ ने सब कुछ दिया—धन, वैभव और ज़मींदारी भी। कुबेर बड़े आदमी हो गए। उन्होंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया। उन्हें ज़मींदारी सँभालने के लिये काफी समय चाहिए था। फिर लाखों रुपया पास हो जाने की वजह से कुबेर को नौकरी करना एक भार-सा जान पड़ने लगा।

किंतु रज्जो? वह साधारण स्त्री न थी। शान-गुमान, रोब-दाब और अभिमान उसमें राजा नरेंद्रनाथ से कम न था। सारे घर ने उसके स्वागत के लिये आँखें बिछाईं, किंतु रज्जो ने इसे ख़ुशामद समझकर पैरों-तले रौंद डाला। वह अपने को सबसे ऊँचा और सम्मानित समझती थी। आशा को तो उसने पहचाना भी नहीं। आशा उसे बहन समझती थी, किंतु रज्जो ने उसे एक चाटुकारिता का अंग समझा। वह बड़े आदमी की बेटी थी, और फिर राजा नरेंद्रनाथ की।

कई दिन रात को ज़रा देर में आने पर उसने पति को आड़े हाथों लिया—"इतनी देर तक बाहर रहने की क्या ज़रूरत? मैं क्या कोई नौकर हूँ, जो आधी रात तक जागती रहूँ?"

सुमेर ज़रा उद्धत स्वभाव का था, उसने जवाब दिया—"तो कौन तुमसे जागने को कहता है। तुम शाम से ही सो जाया करो। मैं तो जब फ़ुरसत पाऊँगा, तभी आऊँगा।"

"तो कौन-सी कमाई किया करते हो, जो फ़ुरसत नहीं मिलती।

किंतु धीरे-धीरे रज्जो ने सारे घर में कलह शुरू कर दी। कुबेर को छोड़कर और सारा घर उससे परेशान था। सुमेर को यह बात धीरे-धीरे असह्य होती जा रही थी।

एक दिन वह किरण से उलझ गई। यों तो किरण बहुत चिड़-चिड़े स्वभाव की थी, किंतु रज्जो का स्वभाव देखकर उसने ज़्यादा बोलना-चालना बंद कर दिया।

किरण ने उसे आवाज़ दी—"बहू! खाना खा जाओ।"

रज्जो कमरे से चिल्लाकर बोली—"मुझे तो खाना खाने में अभी घंटा-भर है। तुम्हें तकलीफ़ होती हो, तो चौका उठा दो।"

किरण उसके पास पहुँचकर बोली—"इस तरह की बातें तुम्हें न करनी चाहिए बहू! यदि तुम राजा की लड़की हो, तो हम लोग कोई कुँजड़े-कबाड़ी नहीं हैं।"

रज्जो उबल पड़ी—"तो मेरे राजा की लड़की होने से सारे घर को जलन क्यों है! मैं चली जाऊँ, तो ठंढक पड़े। हाय राम, मेरा तो इस घर से जी ऊब उठा है। कहाँ आकर फँस गई।"

किरण फिर बोली नहीं। कुबेर ने सुना, किंतु चुप रहे। वह रज्जो को अभी नासमझ समझ रहे थे। वह उसकी प्रत्येक बात को स्नेह की दृष्टि से देखते। वह समझ रहे थे कि बड़े घर की बेटी है, मिज़ाज बिगड़ा हुआ है, आगे चलकर सँभल जायगा।

एक दिन रज्जो को लेकर सुमेर ने सिनेमा जाने की तैयारी की। सुमेर ने कुछ सोच-समझकर कहा—"भाभी और आशा को भी साथ ले लो।"

रज्जो मुँह बनाकर बोली—"ले न लो। मैं क्या मना करती हूँ। और, कौन तुम मेरी बात मान लोगे, जो अपनी ज़बान डालूँ।"

"और, तुम्हारी हरएक बात मानने की मुझे ज़रूरत भी नहीं।" कहते हुए सुमेर ने आवाज़ दी—"अरे भाभी, ओ भाभी!"

आशा धीरे से कमरे की ओर गई। सुमेर ने कहा—"भाभी, ज़रा ठंडा पानी पिला दो।"

किरण ने आँखें तरेर कर रज्जो की ओर देखा, और गिलास में पानी भरकर ले आई।

थोड़ी देर में आशा सफ़ेद धोती पहनकर आ गई। सुमेर ने कनखियों से उसकी ओर देखा। साधारण-सी श्वेत धोती के अंदर भी आशा सुमेर को तड़कीले-भड़कीले कपड़े पहने हुए रज्जो से अधिक सुंदर जँची।

तीनों चल दिए।

❀ ❀ ❀

'अधखिला फूल'-फ़िल्म चल रहा था। तीनों आरचेस्ट्रा क्लास में बैठ गए। सुमेर, रज्जो और उसके बाद आशा बैठी।

कहानी की नायिका एक युवती विधवा थी। नायक नरेंद्र उसके प्रेम में पड़कर सब कुछ छोड़ चुका था—माता, पिता और विवाहिता स्त्री।

सुमेर ने कई बार आशा की ओर देखकर मन-ही-मन में गहरी निःश्वास ली।

नायक कह रहा था—"करुणा, मैं अब बहुत दूर आ गया हूँ, जहाँ से पीछे हटना मेरे लिये आसान नहीं। मैं जिस स्रोत में बह चुका हूँ, उसकी कल्पना तुम कर सकती हो।"

विधवा करुणा का मुँह लाल हो गया था। आवेश में आकर नरेंद्र ने उसका हाथ पकड़ लिया।

सहसा सुमेर का हाथ पीछे कुरसी की ओर गया। आशा कुरसी की पीठ पर अपना हाथ रक्खे हुए नायिका के चरित्र से अपनी तुलना कर रही थी। सुमेर का हाथ उसके हाथ पर पड़ा। वह झिझकी, किंतु हाथ हटाया नहीं। सुमेर उसके हाथ पर अपना हाथ रक्खे स्वर्गीय सुख उठा रहा था।

और आशा बेचारी का कहीं ठिकाना न लगता। रज्जो साधारण स्त्री नहीं।

उधर आशा ने सोचा, मैं ही सर्वनाश की जड़ हूँ। मेरी-जैसी स्त्री को क्या कभी भूलकर इस ओर पैर रखना चाहिए? 'अगर रज्जो को मालूम हो गया, तो फिर क्या दशा होगी! तो फिर मैं क्या करूँ? कहाँ चली जाऊँ? अच्छा, यदि उनसे खोलकर कह दूँ, तो? यही सबसे उत्तम मार्ग है। हाय! मेरा रूप और यौवन ही इस घर का नाश करेगा, और कुबेर दादा! नहीं, मैं उन्हें विपत्ति में नहीं डालना चाहती। मुझे काला मुँह करके कहीं चला जाना चाहिए। किंतु ठौर कहाँ? और हृदय? हाय, न-जाने क्यों उनसे अलग होने का जी नहीं चाहता। उनका वह हाथ कितना कोमल और सुखकर था! किंतु छि!

आशा को रात-भर नींद नहीं आई। सबेरे उसे सुमेर को अपनी शक्ल तक दिखलाने में लज्जा आ रही थी, और सुमेर भी अपने को आशा की दृष्टि से बचाना चाहता था।

उस दिन से सुमेर कुछ अनमना-सा रहने लगा। रज्जो की ओर से उसका चित्त हटता जा रहा था। यदि रज्जो चतुर तथा सुघड़ पत्नी होती, तो सुमेर और आशा, दोनो ही का कल्याण हो सकता था। सुमेर का मन जैसे-जैसे रज्जो की ओर से हटता जाता था, वैसे-ही-वैसे वह आशा की ओर और खिंचता जा रहा था। उसने रज्जो से मन लगाने की बड़ी चेष्टा की, किंतु अभिमानी और धन-कुबेर राजा नरेंद्रनाथ की लड़की भला किसी को क्या समझती थी। सुमेर उसके मनोभावों को समझता था, और यही कारण था कि रज्जो के प्रति उसके हृदय में घृणा बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो चला था, और रज्जो से उसकी रोज़ ही झड़प हो जाया करती थी।

छोड़ा है, इसका मज़ा देख लेना। बाबूजी का अपमान किया है। जेलखाने जाना पड़ेगा, जेलखाने . . ."

सुमेर ने झपटकर उसके बाल पकड़ लिए, और ज़मीन पर पटक-कर लातों से मरम्मत शुरू कर दी। रज्जो के चिल्लाने की आवाज़ पास-पड़ोस तक सुनाई देने लगी। कुबेर और किरण ने पहुँचकर उसे छुड़ाया।

"हरामज़ादी, अपने को लाट साहब की बच्ची समझती है। हड्डियाँ पीसकर रख दूँगा, उल्लू की पट्ठी।" सुमेर ने दाँत पीसते हुए कहा।

रज्जो चुपचाप एक ओर खड़ी हुई थी, उसे स्वप्न में भी सुमेर से इस प्रकार की आशा न थी।

कुबेर ने लाल-लाल आँखें करके कहा—"हैवान मत बनो सुमेर। तुम्हें स्त्री पर हाथ उठाते हुए लज्जा आनी चाहिए थी। चलो बेटी, मेरे साथ चलो।"

कुबेर रज्जो को सान्त्वना देकर नीचे चले आए। उन्हें सुमेर के इस व्यवहार पर क्रोध तथा आश्चर्य हो रहा था।

आशा और किरण भी अपने कमरों में लौट गईं। आशा ने कहा—"सुमेर दादा का यह काम बहुत बुरा रहा भाभी।"

जीभ दबाकर किरण ने कहा—"मुँहजोरी करेगी, तो मार नहीं खाएँगी। औरत ज़ात और इतनी बड़ी ज़बान! आसमान सिर पर उठा रक्खा है।"

आशा चुप हो रही।

इसका नतीजा यह हुआ कि चौथे दिन महेंद्रनाथ आकर रज्जो को लिवा ले गए। रज्जो जाते समय किसी से बोली तक नहीं।

केवल कुबेर की आँखों में दो आँसू दिखलाई दिए।

किरण की बात पूरी भी न हुई थी कि तारवाले चपरासी ने आवाज़ दी।

कुबेर ने तार खोलकर पढ़ा—"नरेंद्रनाथ की कल रात को मृत्यु हो गई है। जल्द आइए।—महेंद्रनाथ।"

कुबेर धक्क-से रह गए। किरण और आशा को भी सुनकर दुःख हुआ। थोड़ी देर मौन रहने के बाद कुबेर ने कहा—"तो अब हम लोगों को वहाँ अवश्य जाना चाहिए।"

"ज़रूर, रियासत की बात ठहरी, न-जाने कौन-सी चाल खेल दी जाय। तुम और सुमेर दोनो जाओ।" किरण ने बुद्धिमानी दिखलाते हुए कहा।

कुबेर क्षण-भर चुप रहे, फिर बोले—"ख़ैर, जायदाद की क्या बात है, जिसे चाहे मिले, किंतु मनुष्यता के नाते भी हम लोगों को जाना चाहिए। अच्छा, सुमेर को आने दो।"

सुमेर ने घर आकर समाचार सुना, और कुछ बोला नहीं।

कुबेर ने उसे बुलाकर कहा—"चलो, सबेरे की गाड़ी से हम लोग रायपुर चलें। तैयारी कर लो।"

"मैं नहीं जाऊँगा।" सुमेर ने दृढ़ता प्रकट करते हुए कहा।

"क्यों?" कुबेर ने साश्चर्य पूछा।

"मैं उनसे कोई संबंध नहीं रखना चाहता।" उसने जवाब दिया।

"यह तुम्हारी नादानी है।" कुबेर ने शांत भाव से कहा।

"जो कुछ भी हो। इस विषय में आप मुझे क्षमा करें।" कहकर सुमेर चला गया।

कुबेर चुप रहे। किरण ने पूछा—"तो फिर कब चलने का इरादा है?"

"आज ही रात की गाड़ी से। चलो, तैयार हो जाओ।" कुबेर ने सोच-विचारकर कहा।

कुबेर हँस दिए। नाव चल दी। रास्ते में माँझी ने कहा—"आशा अच्छी है?"

"हाँ।" कुबेर बोले।

थोड़ी देर में सोच-समझकर ५०० रुपयों के नोटों का पुलिंदा निकालकर कुबेर ने माँझी के हाथों पर धर दिया, और कहा—"ये हैं तुम्हारे रघुनाथ!"

माँझी की प्रसन्नता लुप्त हो गई। क्षण-भर चुप रहकर और एक हलकी-सी निःश्वास लेकर उसने कहा—"अब बड़े आदमी हो गए मालूम पड़ते हो, कुबेर भैया!"

"नहीं, रघुनाथ! मैं पहले ही-सा एक साधारण आदमी हूँ। पास में थे, इसी से दे दिया।" कुबेर ने खिसियाए-से होकर कहा।

माँझी ने फिर बात नहीं की। किनारे पहुँचकर कुबेर ने उसके हाथ पर पाँच रुपए निकालकर रख दिए।

माँझी ने फिर निःश्वास ली, और कहा—"समय के फेर में पड़कर आदमी कितना बदल जाता है, कुबेर भैया! यह आज मुझे मालूम हुआ। तुम वास्तव में कुबेर हो गए हो भैया। अच्छा, बुरा न मानना। भगवान् करे, फलो-फूलो।"

इतना कहते हुए माँझी ने एक साँस ली, और चल दिया।

आज उस दिन की आत्मीयता का अभाव माँझी को खटक रहा था।

कुबेर निरुत्तर होकर खड़े रहे। माँझी ने घूमकर देखा भी नहीं।

❀　　❀　　❀

अब सुमेर और आशा एक दूसरे के अधिक निकट थे, किंतु दोनो में बातचीत बिलकुल बंद थी। सुमेर भी कम बोलने की चेष्टा करता था, और आशा भी दूर-दूर रहती थी। किंतु दूर-दूर रहने पर भी उनके

देवेंद्र ! उसे तो बड़ी प्रसन्नता होगी। किंतु सुमेर, सुमेर ! सुमेर

उसे दरवाज़ा हिलता-सा जान पड़ा। वह उठी, दरवाज़ा खोलकर बाहर आई। ज़रा ठिठकी, फिर चुपचाप सुमेर के कमरे की ओर जाने के लिये सीढ़ी पर चढ़ी। उसका हृदय धड़क रहा था, किंतु पैर सुमेर के कमरे की ओर बढ़ रहे थे।

दरवाज़े के पास पहुँचकर उसने किवाड़ पर हाथ रक्खा। दरवाज़ा भीतर से बंद था।

सुमेर किवाड़ बंद किए हुए, पलँग पर लेटा हुआ आँसुओं से तकिया भिगो रहा था।

आशा चुपचाप लौट गई।

दूसरे दिन सबेरे सुमेर ने आशा से कहा—"आज मैं एक काम से बाहर जा रहा हूँ। रात को लौटूँगा। मेरी रास्ता मत देखना।"

आशा ने नीचा सिर किए हुए कहा—"रात को भोजन तो कीजिएगा ?'

"अच्छा, कर लूँगा !" कहकर सुमेर चल दिया।

"क्या बात है बेटी ?" उसकी मा ने पूछा।

"कुछ नहीं। आज वह खाना नहीं खाएँगे।" कहकर आशा चुप हो रही।

आज उससे भी दिन को भोजन नहीं किया गया। दिन-भर अकेली, उसका मन इधर-उधर भटकता रहा। शाम को वह मन बहलाने के लिये सुमेर के कमरे में जा बैठी। उसने पुराने चित्रों को आलमारी से निकालकर देखना प्रारंभ किया।

अलबम में सुमेर के दर्जनों चित्र थे। आशा जी भरकर उन्हें देखने लगी। सुमेर का एक चित्र हाल का ही खींचा हुआ था। आशा ने उसे निकाल लिया, और बाक़ी चित्रों को उठाकर धर दिया।

"मैं अभागिनी हूँ, तुम देवता हो। क्या मुझे दासी बनाकर भी रख सकोगे?"

"दासी नहीं, रानी!" कहकर सुमेर ने उसे कसकर हृदय से लगा लिया।

❀ ❀ ❀

हाय विधवा आशा! तूने यह क्या किया। कुबेर! दौड़ो।

"तब ठीक है। और, क़ायदे से भी सभी कुछ हमीं को मिलना चाहिए, किंतु कानपुर मैं भी साथ चलूँगी। ज़रा आख़िरी बार सबसे मिल-जुल आऊँगी।"

कुबेर ने हँसकर कहा—"ठीक है। वास्तव में माल तो सब आशा का था, किंतु तुम्हारे हाथ लग गया।"

मुँह मटकाकर किरण ने कहा—"बड़ी आशा कहीं की आई छोकड़ी।"

❀ ❀ ❀

किंतु किरण को क्या मालूम था कि इस सारी रियासत का सर्वस्व इस समय आशा के प्रेम का भिखारी बना हुआ सर्वस्व गँवा चुका था।

सुमेर ने हँसकर आशा के गाल पर चुटकी काट ली, और कहा—"बनारसी साड़ी तुम पर कितनी खिलती है आशा!"

"लेकिन यह सब चार दिन का है। जिस दिन भाभी आ गई, उस दिन हमारा और तुम्हारा ठिकाना न लगेगा।" आशा ने कहा।

और सचमुच 'भाभी' ने किवाड़ पर धक्का दिया। सुमेर ने बिना सोचे-समझे किवाड़ खोल दिए। उसे स्वप्न में भी आशा न थी कि भैया और भाभी इतनी जल्दी, बिना सूचना दिए, लौट आएँगे।

आशा सोलहो शृंगार किए हुए थी, वह किरण को देखकर अपने कमरे की ओर भागी, किंतु किरण ने सब कुछ देख लिया।

वह माथे पर हाथ रखकर, वहीं आँगन में, बैठ गई। सुमेर चुपचाप ऊपर अपने कमरे में चला गया।

किरण की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसे स्वप्न में भी आशा और सुमेर से यह उम्मीद न थी।

कुबेर ने कहा—"उठो, बैठ क्यों गई ? आशा कहाँ गई। ज़रा. "

किरण ने बात काटकर कहा—"हल्ला मत मचाओ। तुमने तो सारी अक़्ल बेच खाई है। देखते नहीं, घर में क्या हुआ है ?"

कुबेर की समझ में अब तक बात न आई थी। वह भौंचक-से होकर चारों तरफ़ देखने लगे।

किरण मुँह बनाकर बोली—"जब कहा था कि दूसरे की जवान-जहान लड़की को घर में रखना ठीक नहीं, तो मेरे ऊपर डपट दौड़े थे। अब भागो जैसा किया था। धन्य हो आशा महरानी! बड़ी पतिव्रता निकली।"

अब कुबेर की समझ में आया। वह इस घटना से बिलकुल अवाक् रह गए।

"लेकिन हल्ला मत मचाओ। जो कुछ हुआ है, उसे सहूलियत से निपटना पड़ेगा। हल्ला मचाने से और मामला बिगड़ेगा और बदनामी होगी।" कुबेर ने शांत भाव से कहा।

किरण बात समझ गई। वह चुप हो गई। थोड़ी देर में आशा के कमरे के पास जाकर उसने आवाज़ दी—"चाची, क्या सो गई ?"

आशा की मा आजकल बीमार रहती थी। उसे नेत्रों से भी न दिखाई देता था। किरण की आवाज़ पहचानकर बोली—"क्या आ गई बेटी! आओ।"

आशा अंदर से किवाड़ बंद किए हुए थी। किरण ने आवाज़ देकर कहा—"अरी आशा! क्या भीतर ही घुसी रहेगी। खोल किवाड़े।"

इतनी देर में आशा अपना शृंगार उतार चुकी थी, किंतु उसके तांबूल-रंजित अधर, हाथ-पैर में मेहँदी और शरीर में सेंट-पाउडर की लपटें क्या छिपाई जा सकती थीं।

आशा ने किवाड़ खोलकर किरण के पैर छुए, और बाहर निकल गई। उसे किसी के भी सामने आने में लज्जा आ रही थी। वह दबे पाँव ऊपर सुमेर के कमरे में पहुँची, और बोली—"अच्छे हो महात्मा तुम ! भाभी सब कुछ समझ गई। अब कहीं ठौर है ?"

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"कुछ कहती थीं क्या ?"

"कहतीं क्या ? और क्या लट्ठ मारतीं। मैं तो मुँह दिखलाने लायक़ रही नहीं।" आशा ने ज़रा गंभीर होकर कहा।

"जाओ, आराम करो। डर की कोई बात नहीं। सब समझ लूँगा।" कहकर सुमेर ने चादर ओढ़ ली।

आशा चुपचाप आकर किरण के पास बैठ गई।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन सवेरे कुबेर ने सुमेर को बुलाकर कहा—"तुम्हें महेंद्रनाथ ने बुलाया है ; आज रात की गाड़ी से तुम रायपुर चले जाओ।"

सुमेर क्षण-भर तक नीचा सिर किए खड़ा रहा, फिर बोला—"मेरी उन्हें क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

"हाँ, ज़रूरत है, तभी तो बुलाया है। रात की गाड़ी से चले जाओ।" कुबेर ने ज़ोर देकर कहा।

सुमेर चुपचाप चला गया।

एकांत में कुबेर को पाकर किरण ने कहा—"सुमेर चला जाय, तो आशा से भी समझूँगी। तुम कुछ बोलना नहीं बीच में।"

कुबेर चुप रहे।

शाम को रायपुर जाने की तैयारी हो रही थी। आशा ने सुमेर के पास पहुँचकर कहा—"आपका लौटना अब मुश्किल है।"

"क्यों ?" सुमेर ने साश्चर्य पूछा।

आशा चुप रही। उसकी आँखों से आँसू बह चले थे।

सुमेर ने उसे धैर्य देते हुए कहा—"मैं शीघ्र लौटूँगा आशा! तुम धैर्य रक्खो। भैया की आज्ञा पालन करना जरूरी है, नहीं तो मैं जाता भी नहीं।"

आशा क्षण-भर चुप रहकर बोली—"किंतु मैं चाहती हूँ कि आप अब न लौटें। आप क्यों अपना भविष्य बिगाड़ रहे हैं।"

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"किसी का भविष्य कोई बना-बिगाड़ नहीं सकता। मेरा वहाँ ठहरना असंभव है।

आशा ने जवाब दिया—"मैंने न-जाने कहाँ से आकर आपकी उन्नति का पथ रोक लिया है। मैं मर जाऊँ, तो कितना अच्छा हो।"

सुमेर चुप रहा।

आशा बोली—"यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं, तो मेरी बात भी मानिए। मुझसे वादा कीजिए कि आप रायपुर में आने की चेष्टा करके काम बिगाड़ेंगे नहीं। सारा घर मुझे ही सर्वनाश की जड़ समझेगा। बोलिए, वादा करते हैं?"

सुमेर चुप रहा। आशा ने उसके समीप जाकर पैर पकड़ लिए, और बोली—"कुबेर दादा के मुझ पर बड़े एहसान हैं, मैं उनका घर बरबाद नहीं करना चाहती। यदि मैं कलंकिनी होकर भी उनका घर बचा सकी, तो अपने को धन्य समझूँगी। बोलिए, क्या मेरी बात मंज़ूर करते हैं?"

"किंतु तुम्हारे बिना मुझसे कैसे रहा जायगा आशा! कभी तुमने यह भी सोचा है?" सुमेर ने कहा।

"जो कुछ भी हो, अब आप मुझे भूल जाइए। यदि आप जल्दी लौटें, तो निश्चय ही अब मेरी और आपकी कभी भेंट न होगी।" आशा ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

सुमेर चुप रहा। आशा उठकर बाहर चली गई।

किरण ने उसे ऊपर से आते देखकर मुँह बना लिया। मन-ही-मन बोली, समझूँगी तुझे भी चुड़ैल। बड़ी मस्ती सवार है। जाने दे अपने खसम को।

उस दिन रात को सुमेर रायपुर रवाना हो गया। किरण के जी में जी आया।

सुमेर के जाते ही किरण ने आशा पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिए। वह चाहती थी, किसी तरह ऊबकर आशा घर से काला मुँह करके जाय या कहीं जाकर डूब मरे, तो घर का कलंक दूर हो। उसे आशा से अब किसी तरह का प्रेम न था।

किंतु कुबेर इसके समर्थक न थे। वह समझते थे, सभी का पैर ऊँचा-नीचा पड़ता है, और फिर इसमें आशा का क्या दोष ? वह सदैव पुरुष पर ही उसका उत्तरदायित्व रखते थे। और, आशा के विषय में तो वह अपने को भी दोषी समझते थे। सुमेर का विवाह करने में जो त्रुटि हुई थी, उसका भी दोष वह अपने सिर पर रखते थे। फिर आशा का क्या दोष ?

किंतु किरण सारा दोष आशा ही पर रखती थी। उसने कुबेर को झिटकते हुए कहा—"इसमें मर्द-बच्चों का दोष ही क्या ? अरे, सँभलकर तो इस चुड़ैल को चलना चाहिए था। उससे ज़रा भी न सोचा गया कि मैं कच्चे घड़े के समान हूँ। जवानी सवार हुई थी। मैं उसे निकालकर छोड़ूँगी। डूब नहीं मरती निर्लज्जा कहीं की ! मुँह दिखाती है !

कुबेर ने कहा—"तो आखिर उसके निकल जाने में भी तो बदनामी है। आखिर वह कहाँ जाकर डूब मरे ?"

"चूल्हे-भाड़ में जाय। उसे तो मरना ही पड़ेगा। मेरे घर में वह अब नहीं रह सकती। मैं उसे एक दिन झाड़ू मारकर निकाल बाहर करूँगी।" किरण ने हाँफते हुए कहा।

दरवाज़े की ओट में खड़ी हुई आशा सब सुन रही थी। एक धीमी-सी निःश्वास लेकर वह अपने कमरे की ओर चली गई।

किंतु दूसरे दिन उसके लिये और एक दुःखद घटना हो गई। दुःख से कराहती हुई उसकी वृद्धा मा उसे सदा के लिये छोड़कर निश्चेष्ट हो गई। आशा रोई, और चुप हो गई।

किरण के अत्याचार बढ़ रहे थे, अब तो वह उसे खुल्लमखुल्ला गालियाँ देती और डूब मरने के लिये कहती। आशा को अपना जीवन अब भार मालूम हो चला था।

एक दिन उसने रात को लेटे-ही-लेटे सोचा, अब इस घर में मेरा कोई नहीं। किंतु जाऊँ भी तो कहाँ जाऊँ? वह अब न आएँगे, और यदि आए भी, तो मुझे साथ में लेकर वह विपत्ति मे पड़ेंगे। फिर क्या करूँ? क्या आत्महत्या कर लूँ? . न, अब यह मुझसे न हो सकेगा। मुझे अब जीवन से प्यार हो गया है। जब फिसल ही पड़ी हूँ, तो सुख क्यों न ढूँढ़ूँ! मैं क्यों मरूँ? क्या मैं अपना सुख कहीं अन्यत्र नहीं ढूँढ़ सकती? किंतु मुझे कौन शरण देगा? कौन कौन.. ।

सहसा उसे देवेंद्र की याद आई। देवेंद्र बुरा है, तो क्या, मेरे लिये तो सब कुछ न्योछावर करने को तैयार था। मैं भी तो अब पहले की-सी पवित्र आशा नहीं हूँ। क्या अब देवेंद्र मुझे आश्रय न देगा? सुमेर—सुमेर, वह क्या कहेंगे? किंतु मैं उन्हें चाहती, हृदय से चाहती हूँ। उनके मार्ग का रोड़ा बनकर उन्हें बरबाद न करूँगी। वह मेरे अपने हैं और सदा अपने रहेंगे। वह प्रसन्न रहेंगे, तो मैं भी शांति-पूर्वक रह सकूँगी। किंतु देवेंद्र? वह मेरा आश्रयदाता हो सकता है, मैं उसके प्रेम की वासना की कठपुतली बनूँगी। ठीक, देवेंद्र, अब तुम्हारे ही पास आश्रय लूँगी। इस घर में अब एक क्षण भी न रह सकूँगी।

आशा उत्तेजित होकर उठ बैठी। रात काफ़ी हो चुकी थी, लगभग १० का समय था। वह चुपचाप दरवाज़ा खोलकर घर के बाहर हो गई।

गली में सन्नाटा छाया हुआ था। आशा डरी किंतु पैर बढ़ाती हुई देवेंद्र के घर के पास पहुँच गई। वह चली तो आई, किंतु उसके पैर पीछे पड़ रहे थे। रात्रि बढ़ रही थी, उसने धड़कते हृदय से दरवाज़े पर धक्का दिया।

'कौन ?'' अंदर से आवाज़ आई।

"मैं।'' आशा ने सूखी आवाज़ से कहा।

किवाड़ खुल गए। आशा और देवेंद्र आमने-सामने थे।

"कौन ? आशा ! तुम। क्यों ? कैसे ? आशा।'' देवेंद्र ने लड़-खड़ाती जबान से कहा।

आशा ने समझा, देवेंद्र होश मे नहीं है। वह सब कुछ निश्चित कर चुकी थी।

"क्यो आई ? आधी रात में, क्या मुझसे कुछ काम है ?'' देवेंद्र ने सँभलते हुए कहा।

'भीतर चलो।'' आशा ने कहा।

दोनो भीतर गए। एक सजे-सजाए कमरे में सोफ़े पर आशा बैठ गई। देवेंद्र भी सामने बैठ गया।

दोनो थोड़ी देर चुप बैठे रहे। आशा ने कहा—"शराब छोड़ सकते हो ?''

"क्या ?'' देवेंद्र के मुँह से निकला।

'मैं पूछ रही हूँ, शराब छोड़ सकते हो ?'' आशा ने दृढ़ स्वर से पूछा।

"शराब ? हाँ, नहीं—तुम्हारा मतलब ?'' देवेंद्र ने लड़खड़ाती जबान से कहा।

"मैं पूछती हूँ, शराब छोड़ सकते हो?" आशा ने दोहराया।

"छोड़ भी सकता हूँ।" देवेंद्र ने आगे की बात सुनने की नीयत से कहा।

"छोड़ सकता हूँ नहीं, आज से शराब पीना छोड़ देना पड़ेगा।" आशा ने आज्ञा के तौर पर कहा।

"तुम्हारे पीछे सब कुछ छोड़ सकता हूँ सुंदरी!" देवेंद्र ने प्रसन्न होकर कहा।

आशा थोड़ी देर चुप बैठी रही, फिर बोली—"कानपुर छोड़ना पड़ेगा।"

"छोड़ दूँगा। मेरे पास धन की कमी नहीं।"

आशा फिर चुप। देवेंद्र उसके रूप पर पागल हो रहा था।

"कल शाम तक लखनऊ चले जाना पड़ेगा।" आशा ने फिर मुँह खोला।

मशीन की भाँति देवेंद्र के मुँह से निकला—"अच्छा, कल ही—अवश्य।"

उसी दिन—हाँ, उसी रात को आशा ने आत्म-समर्पण कर दिया। देवेंद्र को मुँह-माँगी मुराद मिल गई।

[६]
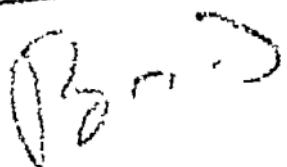
सबेरे घर में आशा का पता न था। किरण सब कुछ समझ गई। उसने आराम से साँस ली।

कुबेर ने कहा—"यह बुरा हुआ। अवश्य उसने कहीं जाकर आत्महत्या कर ली।"

किरण बोली—"चलो, पाप कटा। उसे मरना ही चाहिए था।"

कुबेर को क्लेश हुआ। उनकी अंतरात्मा ने कहा—"यह सब कुछ अच्छा नहीं हुआ। वह हमारी आश्रिता थी।"

बात पुरानी पड़ गई। कई दिन बाद कुबेर ने कहा—"अब ज्यादा समय नष्ट करने से क्या लाभ? हमें रायपुर चलकर काम सँभालना चाहिए।"

"चलो, मैं तैयार हूँ। घर में ताला लगा देंगे। सामान ले जाने का ज्यादा झंझट न करना चाहिए। फिर कभी आकर इसे ठिकाने लगा देंगे।" किरण ने उत्तर दिया।

कुबेर ने दो दिन के भीतर दौड़-धूप कर जाने की तैयारी कर दी। तीसरे दिन रायपुर के लिये दोनों चल दिए।

रायपुर पहुँचकर कुबेर ने देखा, महेंद्रनाथ का एक साला सपरिवार आकर अपनी बहन की सहायता से, जायदाद हड़पने की कोशिशें कर रहा है। महेंद्रनाथ की स्त्री प्रभा अपने भतीजे महेश को गोद लेने की तैयारियाँ कर रही है।

साले का नाम था रामजीवन।

प्रभा को किरण और कुबेर का आना अच्छा नहीं लगा।

महेंद्रनाथ और प्रभा का गोद लेने के विषय में संघर्ष चल रहा था। महेंद्रनाथ इस झंझट में न पड़ना चाहते थे, और प्रभा इस बात के लिये तुली हुई थी। उसने रामजीवन को स्टेट का मैनेजर नियुक्त करवा दिया था।

सुमेर का अजब हाल था। रज्जो का और उसका अब तक बोल-चाल तक न हुआ था। राजा नरेंद्रनाथ की अभिमानिनी पुत्री अब तक ऐंठी हुई थी, और सुमेर भी झुकना न चाहता था।

कुबेर को यह सब देखकर निराशा ही हुई। उसने सुमेर को बुलाकर कहा—"ऐसा कब तक चलता रहेगा। इस प्रकार तो हम अपना सर्वनाश कर लेंगे।"

सुमेर थोड़ी देर चुप रहकर बोला—"मैं तो कानपुर जाना चाहता हूँ। यहाँ मेरा निर्वाह न हो सकेगा।"

कुबेर को सुमेर की बात कुछ अच्छी न लगी। उन्होंने कहा—"आखिर कानपुर जाकर क्या होगा? हम लोग अकेले यहाँ करेंगे क्या?"

"आपकी मर्ज़ी। मगर मैं यहाँ अब और अधिक रहकर अपमान बरदाश्त न कर सकूँगा।" सुमेर ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

कुबेर चुप हो गए।

सुमेर को आशा का सारा हाल मालूम हो चुका था, अतएव उसका मन कानपुर जाने के लिये छटपटा रहा था। अगर रज्जो चाहती, तो परिस्थिति बच सकती थी, किंतु उसने बात तक करना ठीक न समझा।

एक दिन बातों-ही-बातों में किरण ने रज्जो से कहा—"तो कब तक यह लड़ाई ठनी रहेगी बहू?"

रज्जो ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"बाबूजी का अपमान करनेवाले को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती।"

किरण चुप हो गई। उसने फिर कुछ कहना ठीक न समझा।

महेंद्रनाथ ने कुबेरचंद को धीरे-धीरे रियासत का सारा प्रबंध सौंप दिया। वह जानते थे, रामजीवन परले सिरे का मूर्ख है, अतएव वह उसे रियासत का प्रबंध दे ही न सकते थे।

रामजीवन ने बहन से शिकायत की। प्रभा ने महेंद्रनाथ को आड़े हाथों लिया—"आखिर कुबेरचंद से ही कौन अक्लमंदी का झंडा झूल रहा है?"

महेंद्रनाथ ने कहा—"आखिर वह भी तो आधे के साझीदार हैं। उनका भी तो हक़ है?"

हक़-वक़ तो कुछ भी नहीं, लेकिन तुम उन्हे सिर पर चढ़ा रहे हो। पूछो, उनका यहाँ क्या काम? चार दिन में महेश बड़ा होकर सब कुछ सँभाल लेगा।"

महेंद्रनाथ चुप रहे। प्रभा ने झल्लाकर कहा—"मतलब की बात पर कैसे चुप हो जाते हो? आखिर तुम्हारा इरादा क्या है?"

"कैसा इरादा?" महेंद्रनाथ ने धीरे से पूछा।

"कैसा इरादा? कैसे बन रहे हैं? महेश को गोद लेने का इरादा; और क्या?" प्रभा ने मुँह बनाकर कहा।

"अच्छा, फिर देखा जायगा।" कहकर महेंद्रनाथ बाहर चल दिए।

प्रभा झल्लाकर रह गई। उसने रामजीवन को बुलाकर कहा—"देखो जी, तुम्हारी बड़ी शिकायत कर रहे थे। तुम ठीक-ठीक काम क्यों नहीं करते?"

रामजीवन खीसें निकालकर बोला—"मैं—मे—क्या नामके—सब कुछ तो करता हूँ—सभी कुछ। अभी दसी दिन—क्या नामके—उसने—क्या नामके—कुबेर, हाँ, कुबेर ने मुझे धमकाकर रोक दिया—क्या नामके—"

प्रभा को हँसी आ गई, बोली—"क्यों धमकाया था कुबेर ने तुम्हें ?"

"क्या नामके—मैं रघुनाथ को रुपया न देने पर डाँट रहा था—क्या नामके—कुबेर ने बीच में आकर उसे छोड़ दिया—मैं—क्या नामके—खून का घूँट पीकर रह गया। एक दिन—क्या नामके—साले को फटकारकर रख दूँगा—क्या नामके—वह होता कौन है।" रामजीवन ने क्रोध से दाँत पीसते हुए कहा। प्रभा चुप रह गई। रामजीवन चला गया।

किंतु हारनेवाली प्रभा न थी। उसने सोच लिया था कि वह जैसे भी हो, उन्हें महेश को गोद लेने के लिये राज़ी करेगी।

एक दिन सुमेर ने जाने की तैयारी कर दी। कुबेर एक तो ऐसे ही चारों ओर से घिरे हुए थे, उधर सुमेर की हरकतों ने उसे और भी परेशान कर रक्खा था।

उसने खिजलाकर सुमेर से कहा—"अगर तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही है, तो तुम कानपुर जा सकते हो।"

सुमेर बिना किसी बात की परवा किए ही उसी दिन रात को कानपुर चल दिया।

रास्ते में न-जाने क्यों उसे आशा से फिर एक बार भेंट हो जाने की उम्मीद हो गई।

सुमेर के चले जाने पर महेंद्रनाथ को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कुबेर को बुलाकर पूछा—"क्यों चले गए ?"

कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"क्या जाने ? कहते थे, अब यहाँ तबियत नहीं लगती।"

"आपने रोका नहीं ?" महेंद्रनाथ ने पूछा।

कुबेर चुप रहे। महेंद्रनाथ ने सोचा, भाई को भाई नहीं देख सकता। क्या जाने इनके मन में क्या है ?

प्रकाश में बोले—"कब तक लौटेंगे ?"

"कुछ ठीक नहीं।" कहकर कुबेर चुप रहे। महेंद्रनाथ चले गए।

❀ ❀ ❀

कानपुर पहुँचकर सुमेर ने आशा का पता लगाना शुरू किया, किंतु उसे निराशा ही हुई। वह विक्षिप्तों की तरह दिन-भर शहर में गश्त लगाता, और शाम को घर आकर पड़ रहता। उसे आशा के ऊपर क्रोध आया, क्या मेरे आने तक रुका भी न गया। यदि आत्महत्या ही करनी थी, तो मुझे क्यों बरबाद कर दिया। किंतु क्या सचमुच ही उसने आत्महत्या कर ली ? और, आख़िर उसे ठौर ही कहाँ था ? इसमें ज़रूर भाभी की शरारत होगी। उन्होंने बेचारी की ख़ूब दुर्गति की होगी। और उसने तंग आकर आत्महत्या कर ली।

सुमेर का मन कानपुर से उचाट हो गया। उसके पास के रुपए भी ख़र्च हो चले थे। कुबेर से वह रुपए माँगना न चाहता था। अब उसे नौकरी की तलाश थी।

रज्जो के विषय में उसने सोचा, कैसी अकड़ी हुई है ? मुझे अपने धन का गुलाम समझ रही है। भैया और भाभी भी कैसे धन में चिपटे पड़े हुए हैं! ये वे ही कुबेर दादा हैं, जो भर-पेट धन-कुबेरों की बुराई किया करते थे। छि ! क्या समय है ? किसी के भी सिद्धांतों का कुछ ठीक नहीं। उनके लिये मैं कुछ नहीं हूँ।

सुमेर नौकरी की तलाश में लखनऊ चल दिया। बड़ी दौड़-धूप के बाद उसे एक दफ़्तर में ४०) मासिक की जगह मिल गई। उसने उसी को जीवन-यापन करने का ज़रिया बना लिया।

उसने कुबेर को भी लखनऊ आने और नौकरी करने की सूचना न दी। उसे भाई और भौजाई से घृणा हो गई थी।

---

[१०]

देवेंद्र अपना सब कुछ ले-देकर आशा के साथ लखनऊ आ बसा। अब वह पहले का-सा देवेंद्र न था। उसने अपना वादा पूरा किया, और थोड़े ही दिनों में उसमें बड़ा परिवर्तन हो गया। वह आशा को लेकर सुखी था।

किंतु क्या आशा भी सुखी थी? उसके हृदय में एक ववंडर था, कभी न बुझनेवाली एक आग थी, जो उसका हृदय उठते-बैठते जलाती रहती थी। उसने देवेंद्र को सुखी करने की चेष्टा की, क्योंकि वह उसे अपना आश्रयदाता समझती थी। देवेंद्र उसे सुखी करने के लिये सब कुछ करता था, और आशा उसकी कृतज्ञ थी। उसे इस बात पर संतोष था कि देवेंद्र अब आदमी बन चुका है। उसने देवेंद्र को कभी इस बात का अनुभव नहीं करने दिया कि उसके हृदय में कुछ और है।

वह सुमेर के विषय में चिंतित रहती, किंतु रायपुर से किसी प्रकार की ख़बर प्राप्त करने का उसके पास कोई साधन न था।

देवेंद्र ने लखनऊ में मित्रों की एक अच्छी-ख़ासी मंडली बना रक्खी थी। कभी-कभी वह सबको निमंत्रित करता और मनोरंजन का सुख उठाता।

आशा किसी से मिलती जुलती न थी। उसने देवेंद्र को सबसे मिलने की स्वतंत्रता दे रक्खी थी। देवेंद्र के सबसे घने मित्र थे एक बंगाली बाबू—मि० घोष। मिसेज़ घोष भी कभी-कभी आया करतीं। आशा से उनकी पटती थी।

एक दिन देवेंद्र ज़रा देर में आया। आशा भी बड़ी रात तक जागती रही थी, बाद में उसे नींद आ गई। उसे बिलकुल पता न चला कि देवेंद्र कब आए। सवेरे जब उसकी नींद खुली, तो उसके बदन में काफ़ी दर्द था।

"कैसी तबियत है आशा?" देवेंद्र ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"ठीक है। आप रात को कब आए, मुझे मालूम नहीं पड़ा।" आशा ने पूछा।

"कल रात को अमीनाबाद में एकाएक सुमेर से भेंट हो गई। लगभग दो घंटे साथ रहकर पीछा छुड़ा पाया। बहुत दुबले हो गए हैं सुमेर!"

आशा के हृदय पर चोट पड़ी। उसने अपनी प्रेम-कथा देवेंद्र से छिपा रक्खी थी। सुमेर का समाचार सुनकर उसे बड़ी वेदना हुई। न-जाने क्यों उसकी इच्छा सुमेर को एक बार देखने की थी।

"लखनऊ क्यों आए थे? क्या चले गए?" आशा पूछ बैठी।

"रायपुर से कुछ खटक गई उनकी, मालूम पड़ता है। वह लखनऊ में नौकरी की तलाश में हैं। शायद उन्हें किसी दफ्तर में एक साधारण-सी नौकरी मिल भी गई है। मुझे तो उन पर बड़ी दया आती है। कुबेर को भाई के साथ ऐसा व्यवहार न करना चाहिए था।" देवेंद्र ने सुमेर के प्रति सहानुभूति दिखलाते हुए कहा।

"हूँ।" करके आशा चुप हो गई।

फिर वह दिन-भर उठी नहीं। उसे न-जाने क्यों ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे सुमेर की सारी विपत्तियों का कारण वही हो।

दो-तीन दिन बाद उसने एक दिन देवेंद्र से फिर पूछा—"उसके बाद फिर सुमेर से आपकी भेंट हुई या नहीं?"

"हाँ, जिस दफ्तर में मि० घोष काम करते हैं, उसी में उन्हें ४०) मासिक की एक जगह मिल गई है। पूछो, इतने में उनकी गुज़र कैसे होगी। खाना बनाने के लिये भी तो एक नौकर रखना पड़ेगा।" देवेंद्र ने कहा।

"मेरे विषय मे तो कुछ नहीं कह रहे थे?" आशा पूछ ही बैठी।

"उन्होने मुझे बतलाया कि आशा की मृत्यु हो गई है।" देवेंद्र ने हँसते हुए उत्तर दिया।

आशा सूखी हँसी हँसकर चुप हो गई। उसने अनुभव किया कि वास्तव में मेरी मृत्यु हो गई है। यह भी कोई जीवन है?

नौकर ने आकर खबर दी—"घोष बाबू आए हैं।"

देवेंद्र बैठक में चले गए। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा, सुमेर भी वहाँ मौजूद थे।

"आइए।" कहकर देवेंद्र ने उनका स्वागत किया।

"कहिए, आज तो मालूम पड़ता है, घर मे ही घुसे रहोगे। श्रीमतीजी की तबियत तो ठीक है न?" घोष बाबू ने पूछा।

"हाँ, ठीक है। देवेंद्र ने मुस्किराते हुए उत्तर दिया।

"क्या देवेंद्र ने विवाह कर लिया?" सुमेर साश्चर्य सोचने लगे। उन्होंने क्षण-भर रुककर कहा—"विवाह कब किया तुमने देवेंद्र बाबू?"

"थोड़े ही दिन हुए हैं।" कहकर बात टालने की गरज़ से उन्होने घोष बाबू की तरफ़ घूमकर कहा—"मिसेज़ घोष बहुत दिनो से नहीं आईं?"

"आजकल उनकी भी तबियत कुछ खराब है। आप जानते हैं, आधे दर्जन बच्चो की मा हमारे देश में किस प्रकार स्वस्थ रह सकती है। हमने तो क़रीब-क़रीब पेंशन दे रक्खी है।" कहकर घोष बाबू हँस पड़े।

सुमेर चारो ओर देवेंद्र का वैभव देख रहे थे। कमरे की सजावट से उनका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। सहसा पर्दे की ओट में उन्हें ऐसा मालूम हुआ, जैसे दो आँखें उनकी ओर देख रही हो। उनकी दृष्टि बार-बार उस ओर जाने लगी।

देवेंद्र उठकर अंदर गए। दरवाज़े के पास ही खड़ी हुई आशा ने पूछा—"क्या सुमेर आए हैं ? बहुत दुबले जान पड़ते हैं।"

देवेंद्र ने हँसकर कहा—"अब उधर तबियत मत ले जाओ, नहीं मेरा दिवाला ही आउट हो जायगा। चलो, थोड़े-से पान लगाकर भेज दो।"

देवेंद्र बैठक मे चले गए। आशा ने एक बार फिर पर्दे से झाँक-कर देखा, और एक हलकी-सी साँस लेकर पान लगाने बैठ गई। उसने नौकर को दो तश्तरियो मे नाश्ता सजाने की आज्ञा दी। नौकर रकाबियाँ तथा मिठाई ले आया।

आज इतने दिनो बाद अपरिचित सी आशा सुमेर के लिये नाश्ता सजाने बैठी। नौकर तश्तरियाँ बैठक में ले गया।

"नाश्ता तो बढ़िया सजाया है भाभीजी ने।" मिठाई मुँह मे रखते हुए सुमेर ने कहा।

आशा पर्दे की ओट से सुन रही थी। उसका हृदय लहरें ले रहा था। सुमेर की दृष्टि भी उधर ही थी।

नाश्ते के बाद देवेंद्र दोनो के साथ घूमने चल दिए। चलते वक्त सुमेर ने एक बार पीछे फिरकर फिर पर्दे की ओर देखा। आशा बराबर वहीं पर थी।

उन लोगो के चले जाने के बाद आशा को ऐसा मालूम पड़ा, मानो वह फिर दूसरी ओर खिंच रही है। उसके हृदय मे एक छोटा-सा अंतर्द्वंद्व आरंभ हो गया था।

मार्ग में जाते हुए सुमेर सोचने लगे, देवेंद्र की स्त्री अच्छी

चरित्र की नहीं मालूम पड़ती । उसका मेरी ओर एकटक देखने का क्या अर्थ था । मैं भी तो विचलित हुआ-सा जान पड़ता हूँ । एक बार उसे अच्छी तरह देखने की इच्छा क्यों बलवती जान पड़ती है ? क्या यहाँ आकर भी शांति न मिल सकेगी ।

उनका ध्यान भंग करते हुए मि० घोष ने कहा—"क्या सोच रहे हो फ़िलॉसफ़र साहब !"

"कुछ नहीं, यों ही ।" कहकर सुमेर चुप हो रहे ।

घर पहुँचकर सुमेर को इसी उधेड़बुन में अच्छी तरह नींद नहीं आई । वह सोचने लगे, मेरा जीवन भी क्या है ? रज्जो, आशा, सभी तो एक-एक करके मेरे पास से चली गईं । अभी तो जीवन का मेरे लिये प्रातःकाल ही हुआ है । देवेंद्र की स्त्री भी एक नई समस्या-सी जान पड़ती है । देवेंद्र को वह कहाँ मिल गई ? किंतु देवेंद्र के चरित्र में भी तो काफ़ी सुधार मालूम पड़ता है । क्या यह उसी की बदौलत है ? और, मैं क्यों उधर आकर्षित हूँ ? क्या वास्तव में वह मेरी ही ओर देख रही थी, या अपने पति की ओर ? क्या स्थिर करूँ, समझ में नहीं आ रहा है ।

इधर आशा ने सोचा क्यों सुमेर ने लखनऊ में आकर मेरी शांति भंग कर दी । मैं किसी तरह अपने दिन व्यतीत कर रही थी, उन्होंने उसमें भी बाधा उत्पन्न कर दी । आखिर उन्होंने अपनी यह दशा क्यों बना रक्खी है ? सब कुछ होते हुए भी वह इस दीन-हीन दशा में अपने को क्यों डाले हैं । क्या देवेंद्र के साथ विश्वासघात करना होगा ? नहीं, उन्होंने सब कुछ मुझे अर्पण कर दिया है, क्या इस पर भी मैं उनकी न रहूँगी । एक बार उन्हें मिलकर समझा सकूँ, तो कितना अच्छा हो । मैं उन्हें समझाकर फिर रायपुर भेज देना चाहती हूँ । यदि ऐसा

न हुआ, तो भारी अनर्थ की संभावना है । यदि वह न गए, तो क्या मैं .

आशा सोचते-सोचते घबरा उठी । उसने सोचा, यदि हम लोग फिर मिल सकें, तो हमारा जीवन कितना सुखद हो जाय, लेकिन रज्जो, देवेंद्र, इनका क्या होगा ? ये सब डूबेंगे ।

दूसरे दिन सुमेर जब शाम को उसके घर आया, तो देवेंद्र न थे । आशा ने नौकर से कहकर उन्हें बैठक में बुलवा लिया, तथा कहला दिया कि बाबू अभी आते होंगे । सुमेर कुरसी पर बैठ गए ।

थोड़ी देर बाद आशा ने उनके लिये नाश्ता भेजा । सुमेर ने जल-पान किया । थोड़ी ही देर में नौकर ने उन्हें एक बंद लिफ़ाफ़ा लाकर दिया । उस पर लिखा था—

"कृपा कर इसे घर से खोलकर पढ़िएगा । अब आप जाइए ।"

सुमेर का हृदय धड़कने लगा । वह पत्र पढ़ने की उत्सुकता में जल्दी से उठकर चले गए । रास्ते में बार-बार उनका मन हुआ कि वह उसे खोलकर पढ़ ले, किंतु इसी प्रकार सोचते-सोचते घर पहुँच गया ।

आशा ने लिखा था—

"मेरा हृदय आपकी ओर आकर्षित हुआ है । आपको जब से देखा है, आपसे मिलने की इच्छा हृदय को व्यथित किए हुए है । कल सवेरे वह कानपुर जानेवाले हैं । क्या आप कल १० बजे आने की कृपा करेंगे ?

आपकी"

सुमेर उद्विग्न हो उठा । क्या किसी भले आदमी की अनुपस्थिति में उसकी स्त्री से मिलना न्याय-संगत होगा ? वह आखिर इतनी जल्दी मेरी ओर क्यों आकृष्ट हो गई । इतने बड़े ऐश्वर्य में रहते

हुए भी उसका मन मेरे-जैसे साधारण स्थिति के आदमी की ओर क्यों आकृष्ट हुआ ? हाय ! इस जीवन में और कितने पाप करने पड़ेंगे । मैं उसे इस मार्ग से हटाने की चेष्टा करूँगा । आशा ! तू-मुझे कहीं का न रक्खा ।

सोचते-सोचते सुमेर को नींद आ गई ।

---

[११]

रामजीवन ने रायपुर पहुँचकर सचमुच ही गड़बड़ी मचा दी। महेंद्रनाथ पर धीरे-धीरे प्रभावती का कुचक्र चलने लगा। वह रोज महेश को गोद लेने के लिये पति पर ज़ोर डालती। धीरे-धीरे कुनेर भी इसका रहस्य समझ रहे थे, किंतु रियासत का सारा प्रबंध उनके हाथ में आ चुका था, अतएव वह अपने को काफ़ी मज़बूत बनाए हुए थे।

रज्जो को भी समय के साथ-ही-साथ अपनी गलती मालूम होती जा रही थी, किंतु अब भी वह अंधकार में थी। प्रभा घर और बाहर दोनों जगह रामजीवन का महत्त्व बढ़ाना चाहती थी, और बहन के बल पर ही मूर्ख रामजीवन कभी-कभी रियासत के प्रबंध में अनुचित हस्तक्षेप करने की चेष्टा करता था। कुनेर बहुत कुछ बरदाश्त कर लेते थे, किंतु धीरे-धीरे उनके लिये ये सब बातें असह्य होती जाती थीं। उन्होंने इस बात को लेकर कई मर्तबा महेंद्रनाथ से स्पष्ट बातचीत करने की चेष्टा की, किंतु उन्हें साहस न हुआ।

बात बढ़ती ही जा रही थी, यहाँ तक कि एक दिन किरण और चंद्रमुखी में भी कहा-सुनी हो गई। किरण ने उसे आड़े हाथों लिया—"पहले बात करने की तमीज़ सीखो, तब बात करना। तुम दाल-भात में मूसलचंद की तरह क्यों हर बात में कूद पड़ती हो?"

चंद्रमुखी ने मुँह बनाकर कहा—"मूसलचंद हूँ, तभी तो बोलती हूँ। अब दाल और भात को यह मूसलचंद मिलने न देगा।"

"तो दाल और भात दोनों के साथ मूसलचंद को भी एक दिन चूल्हे में झोंक दूँगी।" कहती हुई किरण वहाँ से चल दी।

चंद्रमुखी ने प्रभा से शिकायत की। प्रभा ने कहा—"तुम चुप रहो भाभी। थोड़े दिन और बरदाश्त करना चाहिए। किरण तो लड़ने को तैयार फिरती है। मैं भी जीजी का लिहाज कर जाती हूँ, नहीं तो एक ही दिन में निपटारा कर लूँ।

कुबेर को यह सब सुनकर बहुत बुरा लगा। वह चुपचाप बैठे थे कि सामने से रामजीवन आता दिखलाई पड़ा। कुबेर ने उधर से मुँह फेर लिया।

"कहिए भाई साहब!" कहते हुए रामजीवन ने खीसें निकाल दीं।

कुबेर कुछ न बोले। रामजीवन ने कहा—"आप तो बेकार मुझसे नाराज़ मालूम पड़ते हैं। अरे, जो होना होगा, वह तो होकर ही रहेगा, आप बेकार क्यों बुरा मान रहे हैं। जिसकी चीज़ है, वह उसका मालिक है, जिसे चाहे दे। ठीक है न महाशयजी!"

रामजीवन ने झट कुबेर का हुक्का अपनी तरफ घुमा लिया, और भकाभक धुआँ फेंकने लगा। कुबेर को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने निगाली अपनी ओर खींचते हुए कहा—"कई दफा आपसे कह चुका कि इस बारे में मैं आपसे कोई बात नहीं करना चाहता। आप क्यों बेकार मेरा सिर खाने आ जाते हैं। जाइए, अपना काम कीजिए।"

"बुरा मान गए? हें हे-हे—क्या नाम के—बुरा मानने की बात क्या है। भला पूछिए, पराई चीज पर क्या जोर? आप बेकार नाराज होते हैं। आप तो पूरे क्या नाम के..."

बात काटकर कुबेर बोले—"आप यहाँ से चले जाइए। मुझे बात करने की फुरसत नहीं। आप जाते हैं, या ."

"हें-हें-हें, अगर मैं न जाऊँ, तो ?" उसने विलक्षण ढंग से मुस्किराते हुए कहा।

"तो—तो, मैं अभी कान पकड़कर आपको बाहर निकलवा दूँगा।" कुबेर ने आपे से बाहर होते हुए कहा।

"आपके बाप का

रामजीवन के मुँह से इतना ही निकला था कि कुबेर ने उसकी कनपटी पर भरपूर तमाचा मारा। वह मारे पीड़ा के तिलमिला उठा। कुबेर ने चिल्लाकर कहा—"निकल हरामज़ादे यहाँ से! नाचीज़ कुत्ता!"

रामजीवन कनपटी सुहलाते हुए वहाँ से बाहर निकल गया। प्रभावती के पास पहुँचकर उसने सारी कथा सुना दी।

दूसरे दिन महेंद्रनाथ ने कुबेरचंद को बुला भेजा। कुबेर समझ गए कि कलवाले मामले पर ही कुछ बात होगी। चलो, यह झगट भी आज ही तय कर डाला जाय। बहुत होगा, महेंद्रनाथ बटवारे के लिये कहेंगे, चलो, यह भी अच्छा होगा। रोज़ का झगट मिटेगा।

आज महेंद्रनाथ कुछ अधिक उदास थे। पास ही कुरसी पर रामजीवन ठाठ से डटा हुआ था। कुबेर पास ही पड़ी हुई आराम-कुरसी पर लेट गए।

रामजीवन अकड़ा बैठा था। कुबेर ने उस ओर देखा भी नहीं। महेंद्रनाथ ने कहा—"रामजीवनजी, आप बाहर चले जायँ। मुझे कुबेरचंदजी से कुछ प्राइवेट बातें करना है।"

रामजीवन का सारा उत्साह भंग हो गया। वह समझ रहा था, महेंद्रनाथ कुबेर को ख़ूब डाँटेंगे और कुबेर उनके सामने गिड़गिड़ा-कर मुझसे माफी माँगेंगे। जिस समय वह मेरे पैर पकड़कर माफी देने के लिये कहेंगे, मैं उन्हें पैर से झटक दूँगा, किंतु उसकी सारी उमंग ठंडी हो गई। वह उठकर बाहर चला गया।

उसके चले जाने पर महेंद्रनाथ ने कहा—"कुबेरचंदजी, आज मुझे आपसे एक बात बड़े कष्ट के साथ कहनी पड़ रही है। आशा है, आप क्षमा करेंगे।"

कुबेर पहले ही से समझ रहे थे, बोले—"कहिए, इसमें क्षमा माँगने की क्या बात है।"

महेंद्रनाथ ने कहना प्रारंभ किया—"बात यह है कि आजकल जो उत्पात घर में मचा हुआ है, उसे आप भली भाँति समझ रहे होंगे। जहाँ तक मुझे पता चला है, घर और बाहर, दोनो ही स्थानो का वातावरण आपके विरुद्ध हो रहा है। कर्मचारी तक आपकी कड़ी नीति की निंदा करते हैं। आप विश्वास रक्खें, मेरे हृदय में आपके प्रति कोई अविश्वास नहीं, और न आप पर मेरा किसी प्रकार का संदेह ही है, फिर भी जनमत की तो परवा करनी ही पड़ती है।"

"ज़रूर करनी चाहिए।" कुबेर ने गंभीरता-पूर्वक कहा।

"लोगो का यह भी ख़याल है कि आपने सुमेरचंदजी का भी पता लगाने की कोई चेष्टा नहीं की। क्या आप बता सकते हैं कि वह आजकल कहाँ है?" महेंद्रनाथ ने पूछा।

इधर दो महीने से उसका कोई पता नहीं। मैंने भी उसके ढुँढवाने की कोई चेष्टा इसलिये नहीं की कि वह स्वयं समझदार है। ठोकरें खाने से इंसान बहुत कुछ सीखता है। एक दिन वह स्वयं अपनी भूल समझकर वापस आ जायगा।" कुबेर ने उत्तर दिया।

"ख़ैर, जो कुछ हो। अब मामला इस हद तक पहुँच चुका है कि मुझे जान-बूझकर इसमें हस्तक्षेप करना पड़ रहा है। आशा है, आप मेरा सारा अभिप्राय समझ गए होंगे।"

कुबेर ने क्षण-भर सोचकर कहा—"निश्चय ही। मैं तो आपका अभिप्राय बहुत दिन से सोचे बैठा हूँ। यदि आप महेश को ही

अपना हिस्सा देना चाहते हैं, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। आप शौक़ से अपना हिस्सा अलग करके उसे दे सकते हैं।'

महेंद्रनाथ ज़रा हँसकर बोले—'देना-लेना तो मैं निश्चय करूँगा, किंतु अब सारा प्रबंध मैंने अपने ही हाथ में लेना विचारा है। आशा है, आप नाराज़ न होंगे।"

किंतु रज्जो के हिस्से के लिये तो आपके स्वर्गीय भाई साहब ने मुझे संरक्षक नियुक्त किया है। यदि मैं न हटना चाहूँ, तो?" कुबेर ने कानून की शरण लेते हुए कहा।

महेंद्रनाथ फिर हँसे। उन्होंने मुस्किराते हुए कहा—"मैं यह जानता हूँ, किंतु फिर भी आपको प्रबंध छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि रज्जो भी आपका प्रबंध पसंद नहीं करती। लीजिए, देखिए।' कहते हुए महेंद्रनाथ ने एक सरकारी कागज उनके सामने रख दिया।

कुबेर ने पढ़ा। उसमें रज्जो ने सरकार के पास उन्हें हटा देने तथा उनके स्थान पर महेंद्रनाथ को नियुक्त कर देने की प्रार्थना की थी, और उस पर सरकार की स्वीकृति भी आ गई थी।

कुबेर के आत्मसम्मान को गहरा धक्का लगा। एक बार उनकी आँखों के सामने बड़े आदमियों की लीला स्पष्ट रूप से नाच गई। कैसे हृदय-हीन होते हैं ये लोग! कठोर!! निर्लज्ज!!!

महेंद्रनाथ बोले—"किंतु हम आपको किसी प्रकार अपमानित करना नहीं चाहते। आप शौक़ से जिस प्रकार यहाँ रहते थे, रह सकते हैं। मैंने सुमेर का पता लगाने के लिये आदमी नियुक्त किए हैं। उनका पता लगते ही मैं सब कुछ उनके हाथों में सौंप दूँगा।"

क्षण-भर चुप रहकर कुबेर ने कहा—"मैं इसके लिये आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ, किंतु अब मैं अपने यहाँ रहने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। अतएव मेरा यहाँ से चला जाना ही ठीक होगा।

बडे आदमियों के यहाँ रहकर सम्मान-सहित वहाँ से चले जाना भी बडे सौभाग्य की बात है।"

कुबेरचंद उठकर खडे हो गए। जैसे ही वह बाहर निकले, वैसे ही उन्होंने देखा, बगल ही में खडा रामजीवन हँस रहा था। कुबेर ने घृणा से अपनी आँखें फेर लीं।

जब वह वहाँ से लौटे, तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ा, मानो सारा प्रासाद उनके इस अपमान पर हँस रहा हो। उन्हें याद आया कि एक दिन जब वह आशा की मा का पत्र लेकर आए थे, उस दिन वह किस प्रकार अकडते हुए इस राजप्रासाद के बाहर गए थे, किंतु आज उन्हें कितना अपमान बरदाश्त करके निकलना पड रहा है। वह पैर बढ़ाते हुए अपने कमरे में घुस गए।

किरण ने वहाँ पहुँचकर कहा—"कैसे सुस्त पडे हो?"

"यों ही।" कहकर कुबेर चुप हो रहे।

किरण उनके पास बैठ गई। बोली—"महेंद्रनाथ से क्या बातें हुईं?"

"अब यहाँ से चलने की तैयारी करो। अब स्वयं महेंद्रनाथ ही अपना प्रबंध करेंगे।" कुबेर ने धीरे से कहा।

"तो क्या वह हमारे हिस्से के भी ठेकेदार हैं? खूब कही!" किरण उत्तेजित होकर बोली।

"तुम्हारे हिस्से के मालिक की भी यही मर्जी है।" कुबेर ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"क्या रज्जा भी यही चाहती है?" किरण ने साश्चर्य पूछा।

"हाँ।" कहकर कुबेर चुप हो गए। किरण भी कुछ न बोली।

❀ ❀ ❀

कुबेर ने और अधिक वहाँ रहना उचित नहीं समझा। शीघ्र ही

उन्होंने कानपुर लौटने की तैयारी की। चलते समय कुबेर महेंद्रनाथ से मिलने गए।

"जाइएगा? लेकिन इतनी क्या जल्दी थी?" महेंद्रनाथ ने सदा की टोन में कहा।

"जब जाना ही है, तो आज गए या दो दिन बाद। चलूँ, अपने धंधे से लगूँ।" कुबेर ने गंभीर-भाव से कहा।

"हें-हें-हें, बात तो आप ठीक कहते हैं। क्षमा कीजिएगा, जो कुछ कष्ट आपको हुआ हो।" महेंद्रनाथ ने हाथ जोड़ते हुए कहा।

"कोई बात नहीं। अच्छा, चला।" कुबेर कहकर बाहर आ गए।

बाहर कुबेर का सामान गाड़ी पर लद रहा था। रज्जो किरण के पैर छूने आई। उसे आशीर्वाद देते हुए किरण ने कहा—"कब का बदला लिया बहू तुमने हमसे। अपने जेठ का अपमान क्या इस प्रकार करना था?"

रज्जो नीचा सिर किए खड़ी रही। वह सदा से किरण का सम्मान करती आई है, आज वह उसकी बात सुनकर कट गई।

किरण और किसी से नहीं मिली। सामान लदवाकर जब कुबेर गाड़ी पर चढ़ने लगे, तो रामजीवन ने आकर कहा—"नमस्कार कुबेर भाई!"

कुबेर ने उसकी ओर घृणा के भाव से देखकर कहा—"नमस्कार।"

"ही-ही-ही" करके रामजीवन हँस पड़ा। कुबेर बिना उधर देखे ही चल दिए।

मार्ग में किरण ने पूछा—"कानपुर पहुँचकर क्या कहोगे?"

कुबेर चुप रहे। किरण ने फिर कहा—"लोगों को हमारे लौट जाने पर बड़ा आश्चर्य होगा। यदि पूछें, तो क्या कहना चाहिए?"

कुबेर ने कहा—"कह देंगे, जब तक जी लगा, रहे, जब न लगा, तो लौट आए। क्या इसमें भी किसी की चोरी है?"

"कुछ आशा का भी पता चला ?" किरण को आज इतने दिन बाद आशा की याद आई।

"न, शायद उसने आत्महत्या ही कर ली। सुमेर का भी कुछ पता नहीं। सारे घर का ही उलट-पुलट हो गया।" कुबेर ने एक साँस लेकर कहा।

"बडे आदमियों के यहाँ विवाह करने का फल मिल रहा है। न इन बेईमानो के यहाँ सुमेर का विवाह होता, और न आज यह दिन देखने को मिलता।" किरण बोली।

"विवाह का क्या दोष, दोष तो अपने ही आदमियों का है।" कुबेर ने कहा।

"यह भी ठीक है। उस क्षणिक वैभव ने हमें और तुम्हें भी तो अधा बना दिया था।" किरण ने उत्तर दिया।

"हॉ, यह भी ठीक है। किंतु ईश्वर ने शीघ्र ही आँखें खोल दीं।" कहकर कुबेर चुप हो रहे।

❀ ❀ ❀

आज कुबेर के लौट आने से सारा घर फिर जगमगा उठा, किंतु कुबेर को कुछ अभाव-सा खटक रहा था। किरण को सुमेर के विना घर सूना मालूम पड़ रहा था, और कुबेर को आशा के विना। सुमेर कानपुर आकर पॉच-सात रोज़ रहे थे, उसके बाद घर मे ताला लगाकर उन्होंने डाक के जरिए ताली कुबेर के पास भेज दी थी। उसी समय से उनका पता न था।

एक दिन ऊबकर किरण ने कहा—"कुछ सुमेर का पता तो लगाना चाहिए। आखिर कब तक वह लापता रहेंगे। न हो, तुम्हीं आस-पास के शहरो में चक्कर लगा आओ।"

"हूँ।" कहकर कुबेर चुप हो गए।

न-जाने क्यों किरण को यह विश्वास होता जाता था कि कुबेर जान-बूझकर भाई की तलाश करने में उदासीन हैं।

कुबेर कभी-कभी सोचते, आखिर वह कहाँ चला गया? आशा तो मर चुकी है, यह बात उसे अच्छी तरह मालूम थी, फिर वह किस उधेड़-बुन में पागल बना घूम रहा है? यदि रज्जो से उसका मन नहीं मिलता था, तो उसका दूसरा विवाह भी तो हो सकता है। फिर वह यह सब पागलपन क्यों कर रहा है। उसकी बुद्धि अवश्य फिर गई है।

एक दिन किरण ने स्वप्न देखा, मानो आशा उसके सिरहाने खड़ी होकर उसका गला दबा रही है। वह चिल्ला उठी। उसकी नींद खुल गई। फिर उसे नींद न आई।

सवेरे ही उसने कुबेर से कहा—"मुझे तो भय लगता है, मानो आशा मरकर भी इसी घर में घूमती हो। यह सब कुछ अच्छा नहीं हुआ।"

कुबेर ने हँसकर बात टालनी चाही, किंतु किरण को इससे सान्त्वना नहीं मिली। वह बोली—"आशा की आत्मशांति के लिये हवन न करवा दो इस मकान में? मुझे तो बड़ा भय लगता है।"

कुबेर को अबकी बार सचमुच हँसी आ गई। बोले—"पगली कहीं की! क्या भूत-प्रेत पर भी विश्वास करना चाहिए?"

उसे फिर भी धैर्य न हुआ। उसने दूसरे ही दिन रामधारी पंडित को बुलवाकर छोटा-मोटा हवन करवा डाला। पंडितजी महाराज दस-पाँच रुपए की पुड़िया बना चलते हुए। तब कहीं जाकर किरण का कुछ भय कम हुआ।

कुबेर ने सब कुछ देखा, अनुभव किया, और शांत बने रहे। उन्हें सदैव किसी अनिष्ट की आशंका सी मालूम पड़ती रहती थी। वह सुमेर के विषय में भी चिंतित थे, और उन्हें ढूँढ निकालना

चाहते थे, किंतु उन्हें स्वय अपने में एक कमज़ोरी-सी अनुभव होती रहती थी, वह दिन-भर घर में पडे रहते, मानो बाहर निकलने के लिये उनका हृदय और पैर, दोनो ही जवाब दे रहे हों। रायपुर की घटनाओ को भी सोच-सोचकर कभी बडे उद्विग्न हो उठते थे। उनकी पारिवारिक, आत्मिक तथा शारीरिक शाति नष्ट हो चुकी थी, और वह ढूँढ़ना चाहते थे कि दोषी कौन है ?

कभी सुमेर, कभी आशा और कभी स्वय अपने को ही वह अपराधी समझ बैठते। धीरे-धीरे उनका स्वभाव भी चिडचिडा हो उठा, तथा भावों में भी कर्कशता आ चली। वह किसी से बात करना पसद न करते, उन्हे आत्ममनन मे ही सुख मिलता। उनमें सक्रियता का अभाव था, और यही कारण था कि वह सफलता से दूर हट जाते थे। उन्होने यह निश्चय किया कि मै केवल आत्म-मनन और विश्राम में ही अपना जीवन-यापन करूँगा, और इसी सिद्धात को लेकर वह अपने स्वभाव तथा कार्य-क्रम को एक विशेष रूप देने के प्रयत्न मे थे।

सध्या के समय उनके एक मित्र उनसे मिलने आए। उनका नाम था जगदीश बाबू। वह कुबेर के बचपन के सगी थे। इन्होने भी आशा-परिवार को काफ़ी सहायता दी थी, किंतु इनकी सहायता नि स्वार्थ न थी। वह भी धीरे-धीरे आशा की ओर अनुरक्त होते गए। एक दिन जब आशा ने उन्हें फटकार बताई, तो उनकी सारी उदारता और सहृदयता उसी दिन से समाप्त हो गई। आज बहुत दिनों बाद वह कुबेर से मिलने आए। वह कलकत्ते मे रहते थे, और वहीं उनका व्यवसाय भी फैला था।

जगदीश को देखकर कुबेर कुछ प्रसन्न हुए। बोले—"तुमने तो इधर आना ही छोड दिया जगदीश!"

"क्या करूँ भाई, किसी प्रकार जीवन का ठेला आगे बढ़ रहा

है। आजकल तो सर्वांग सुख निपट एकांत में मिलता है। तुम भी तो काफ़ी बदल गए हो कुबेर। भाभी कहाँ हैं? ओ भाभी!" कह-कर जगदीश चिल्ला उठे।

"कौन है भाई?" कहती हुई किरण वहाँ आ गई।

"अरे, मै हूँ, और कौन होगा। आज बहुत दिन बाद आया हूँ। कुछ खा-पीकर ही लौटूँगा भाभी!" जगदीश किरण के निकट जाकर बोला।

आज बहुत दिन बाद किरण के मुँह पर ज़रा-सी हँसी दिखलाई दी। उसे जगदीश को देखकर बहुत दिनो की स्मृति की झलक दिखाई दे गई। किरण बोली—"कहाँ रहे इतने दिनो से?"

"अरे, कहीं नहीं भाभी! थोडे दिनो के लिये ज़रा हवा बदलने चला गया था। बडी दुबली हो तुम!" जगदीश बोले।

"नहीं तो। जैसी थी, वसी हूँ। अच्छा, ठहरो, ज़रा जल-पान ले आऊँ।" कहकर किरण अंदर चली गई।

"कुछ फ़िलॉसफ़र-से हो गए मालूम पडते हो।" जगदीश कुबेर से बोला।

"नहीं तो।" कुबेर ने धीरे से कहा।

"कुछ छिपा रहे हो क्या?" जगदीश ने उन पर निगाह गड़ा-कर कहा।

"कुछ नहीं भाई, क्या बताऊँ?" कहकर कुबेर ने एक ठंढी साँस ली।

"क्या बात है?" जगदीश ने पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर कुबेर ने कहा—"आज बहुत दिनों से सुमेर का पता नहीं चलता। बहू से उससे कुछ अनबन हो गई थी . .."

बात काटकर जगदीश बोल उठे—"एँ, क्या कहा, सुमेर का पता

नहीं। अरे, भाई! अभी कल मैंने उसे लखनऊ में देखा है। क्या वह यहाँ नहीं आया?"

कुबेर चौंके—"क्या कहा? लखनऊ में! कहाँ मिला था तुम्हें?"

"कल मैं सवेरे लखनऊ पहुँचा। जिस समय मैं कुछ सामान ख़रीदने अमीनाबाद पहुँचा, तो मुझे चौराहे के पास ही सुमेर दिखलाई पड़ा। उसके साथ वही दुष्टात्मा देवेंद्र भी था। मैंने उससे बड़ी देर तक बातचीत की। उसने मुझे कुछ नहीं बतलाया। देवेंद्र तो मुझे अपने घर ले गया। वहीं तो कल भोजन किया था।"

"ओ किरण, ज़रा इधर आना। सुमेर लखनऊ में है—ज़रा सुनना।" कुबेर ने आवाज़ दी।

किरण एक तश्तरी में मिठाई लेकर आई। किंतु सुमेर की ख़बर सुनकर खड़ी-की-खड़ी रह गई।

"सुमेर लखनऊ में है।" कुबेर ने गभीरता-पूर्वक कहा।

"तो चलो, उसे ले आवें। कैसे पता चला?" किरण ने झटपट कहा।

"मेरे सिवा और कौन तुम्हारा काम कर सकता है भाभी! पहले मिठाई तो खा लेने दो।" कहकर जगदीश ने तश्तरी ख़ाली करना शुरू कर दिया।

अंत में यह तय किया गया कि कुबेर और जगदीश देवेंद्र के घर जायँ, और उसके द्वारा सुमेर को खोज निकाला जाय।

कल सबेरे आने का वादा करके जगदीश चला गया।

उसके चले जाने पर किरण ने कहा—"न-जाने वह लखनऊ में क्या करता है? इस लड़के का भी अच्छा भला दिमाग़ ख़राब हो गया। मेरी राय से तो उसका दूसरा विवाह कर दिया जाय।"

कुबेर कुछ न बोले। किरण ने फिर कहा—"बहुत दिनों से रायपुर की भी कोई ख़बर नहीं आई।"

कुबेर फिर भी चुप रहे। किरण बोली—"और यह देवेंद्र वहाँ कैसे पहुँच गया। सुना है, सुमेर उसी के साथ था।"

"हूँ।" कहकर कुबेर मौन हो रहे।

दूसरे दिन जगदीश लखनऊ जाने के लिये तैयार होकर आ गया। कुबेर भी तैयार थे।

सवेरे ही पोस्टमैन ने एक चिट्ठी लाकर दी। उस पर रायपुर की मुहर थी। पत्र में था—

"रज्जो की हालत चिंता-जनक है। यदि हो सके, तो आने की कृपा करें।

भवदीय—

महेंद्रनाथ"

पत्र पाकर कुबेर विचलित हो उठे। फिर भी उन्होंने लखनऊ जाना स्थगित न किया। किरण को पत्र देकर वह लखनऊ रवाना हो गए।

---

[१२]

रायपुर से कुबेर के जाते ही रामजीवन का सिक्का जम गया। महेंद्रनाथ तो नाम-मात्र के मैनेजर थे। सारा प्रबंध प्रभावती के हाथ मे था। रामजीवन अब पूरा नवाब था—जिसको चाहा, निकाल बाहर किया, जिसको चाहा, अपनी नौकरी में रख लिया। बेवकूफ तो वह परले सिरे का था, फिर क्या था, चारों ओर लोग त्राहि-त्राहि करने लगे। महेंद्रनाथ से जिन लोगों ने जाकर शिकायत की, वे लोग प्रभावती द्वारा बरखास्त कर दिए गए।

किंतु प्रभावती के लाख प्रयत्न करने पर भी महेंद्रनाथ ने महेश को गोद न लिया। उन्होंने प्रभावती से स्पष्ट कह दिया कि मै महेश तथा रामजीवन के चरित्र से संतुष्ट नहीं। अपनी दाल गलती न देखकर प्रभा ने चारो ओर से रुपया बटोर-बटोरकर रामजीवन को देना शुरू कर दिया। पहले तो वह रज्जो से मिली रही, किंतु अपना षड्यंत्र विफल होता देख रज्जो को भी अवहेलना की दृष्टि से देखने लगी। रज्जो की मा सीधी-सादी स्त्री थी, उन्होंने एक-आध बार महेंद्रनाथ से इन बातों की शिकायत की।

महेंद्रनाथ कुछ सोचकर बोले—"क्या करोगी भाभी, इन झगड़ो मे पड़कर? अब कितने दिन हमें-तुम्हें जीना है?"

हेमप्रभा ने आँखों मे आँसू भरकर कहा—"किंतु मेरी आँखो के सामने ही मेरी रज्जो का जीवन नष्ट हो गया। आजकल वह जैसी सूखकर काँटा हो रही है, उससे मालूम पड़ता है कि उसे भीतर-ही-भीतर बड़ा कष्ट है। क्या करूँ?"

रज्जो चुप हो गई । हेमप्रभा बड़ी देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती रही, बाद में वह उठकर चली ।

"सुनो मा !" रज्जो ने पुकारा।

"क्या बेटी ?" हेमप्रभा ने वहीं से कहा ।

रज्जो चुप हो गई । हेमप्रभा ने कहा—"क्या चाहिए बेटी ! मैं ज़रा स्नान करने जा रही हूँ ।"

"अच्छा, लिख दो मा ।" कहकर रज्जो ने अपना मुँह चादर में लपेट लिया ।

हेमप्रभा ने उसके शरीर पर हाथ रक्खा ।

सारा शरीर ज्वर से जल रहा था ।

* * *

महेंद्रनाथ ने रामजीवन को बुलाकर कहा—"देखो जी ! चारों तरफ से तुम्हारी काफ़ी शिकायतें आ रही हैं । मैं इस तरह की बातें ज़रा कम पसंद करता हूँ ।"

"जी-जी-जी, आपने क्या-क्या शिकायत सुनी है मेरी । मैं तो—तो .. ।"

बात काटकर महेंद्रनाथ ने कहा—"चुप रहो जी ! तुम निहायत झूठे आदमी हो । अगर तुम्हारी ये हरकतें बंद न हुईं, तो तुम्हें इसका फल भोगना पड़ेगा । तुमने परसों मनोहर को क्यों पिटवाया ? जवाब दो ।"

'मैंने—मैंने किसी को कभी नहीं पिटवाया । वह साला—वह साला—क्या नामके—रघुबरवा होगा, रघुबरवा । उसी ने आपसे मेरी झूठी शिकायत की होगी । सरासर झूठ ! एकदम झूठ ! मैं साले को समझ लूंगा । एकदम झूठ बोलता है—क्या नामके—उल्लू ।" रामजीवन ने मिटपिटाते हुए कहा ।

महेंद्रनाथ ने दरबान को पुकारकर कहा—"जाओ, रघुबर को हाज़िर करो।"

थोड़ी देर में रघुबर ने आकर बंदगी की। महेंद्रनाथ ने कहा—"क्यों जी रघुबर! तुमसे इन्होंने क्या कहा था? सच-सच बोलना।"

रघुबर ने बाक़ायदा सलाम अदा करते हुए कहा—"जी सरकार! आपसे भला झूठ बोलने की हिम्मत किसे हो सकती है। रामजीवन बाबू ने मुझसे कहा था कि मनोहर को एक दिन पीटना होगा।"

'झूठ! एकदम झूठ! मैं तो .. .."

डॉक्टर महेंद्रनाथ ने कहा—'चुप रहो जी! दूसरे को अपनी बात कहने दो।"

रघुबर ने कहना प्रारंभ किया—"मुझे इन्होंने १००) देने का वादा किया। मैंने कहा—'मैं बाल-बच्चेवाला आदमी, किसी बेक़सूर आदमी को नहीं पीटूँगा।' इस पर ताव खाकर इन्होंने कहा—'जानता नहीं साले! मिट्टी में मिलवा दूँगा। किसके भरोसे भूला है तू। तुझे नहीं मालूम कि . '" कहकर रघुबर चुप हो गया।

महेंद्रनाथ ने पूछा—"क्या कहा था, कहो।"

"सरकार, ऐसी बात मैं मुँह से नहीं निकालना चाहता।" कहकर रघुबर चुप रहा।

"बोलो, बोलो। सब बातें ठीक-ठीक कहो।" महेंद्रनाथ ने आज्ञा देते हुए कहा।

थोड़ी देर रुककर रघुबर ने कहा—'इन्होंने कहा था कि सरकार के न रहने के बाद मैं ही रायपुर का मालिक बनूँगा। रानी बिटिया तो चंद दिन की मेहमान है।"

रामजीवन उछलकर खड़ा हो गया, और चिल्लाकर बोला—"झूठ, एकदम झूठ! मैं तुझे नौकरी से आज ही अलग कर दूँगा। और, तूने—तूने मुझसे नहीं कहा कि कि कि .कि .."

सूखी हँसी हँसकर महेंद्रनाथ ने कहा—"क्या कहा था राम-जीवन ! बताना तो ज़रा।"

रामजीवन का साहस बढ़ा। उसने कहा—"इसने—इस साले ने मुझसे कहा था कि छोटी रानी मुझ पर बड़ी मेहरबान हैं। क्या नामके—सरकार से भी बढ़कर मुझे मानती हैं। नमकहराम कहीं का। ये साला रोज़ रात को जीजी से घटों हँस-हँसकर . "

महेंद्रनाथ की आँखें लाल हो गईं। वह चिल्लाकर बोले—"निकल जाओ, दोनो यहाँ से इसी वक्त। हरामज़ादो ''

रामजीवन सिर पर पैर रखकर भागा। रघुबर धीरे से वहाँ से हट गया।

महेंद्रनाथ का चेहरा क्रोध से लाल था। थोड़ी देर में हेमप्रभा ने आकर कहा - "चुप क्यो हो महेंद्र ! क्या तबियत ठीक नहीं ?"

महेंद्रनाथ सँभले। बोले—"नहीं भाभी ! यो ही ज़रा तबियत भारी हो गई थी। कहो, रज्जो का क्या हाल है ?"

"इस समय उसे काफी ज्वर है। कुबेरचंद को आज ही पत्र लिखवा दो।" हेमप्रभा ने कहा।

"किंतु रज्जो .."

"वह राज़ी है। उसे कोई आपत्ति नहीं।" हेमप्रभा ने कहा।

"अच्छी बात है।" कहकर महेंद्रनाथ चुप हो गए।

हेमप्रभा चली गई। महेंद्रनाथ सोचने लगे, कितना पतन हो गया है इस घर का। इस सबका कारण केवल एक मेरी कम-ज़ोरी है। यदि मैं प्रारंभ से ही व्यवस्था ठीक रखता, तो आज मेरी तथा इस घर की यह दशा न होती। हाय ! आज भाई साहब के न रहने से सभी कुछ तो इधर का उधर हो गया। और प्रभा ! तूने इस कुल में अमिट दाग लगा दिया। किंतु किया क्या जाय ? कुबेर ? उन्हें भी तो व्यर्थ के प्रभाव में पड़कर मैंने यहाँ

से अपमान के साथ अलग कर दिया। प्रभो! तुम्हीं इस वंश की लाज रखना।

उसी दिन महेंद्रनाथ ने रज्जो की बीमारी की सूचना कुबेरचंद को दे दी। उन्हें यह विश्वास था कि कुबेरचंद बीमारी की सूचना पाकर अवश्य आएँगे।

शाम को प्रभा ने आकर कहा—"क्यों जी, तुमने रामजीवन को क्यों डाँट दिया? वह बेचारा क्या हमारे यहाँ डाँट खाने आया है।"

महेंद्रनाथ चुप बैठे रहे। वह उसकी ओर न देखना ही चाहते थे और न उससे बात करना ही। प्रभा ने उन्हें चुप देखकर कहा—"यदि तुम्हें उसे न रखना हो, तो सीधी तरह कह दो। वह लौट जायगा।"

महेंद्रनाथ को कुछ क्रोध आ गया। उनके मुँह से निकला—"तो उसे रोकता कौन है? क्यों नहीं चला जाता? मैं क्या उसे बुलाने गया था?"

प्रभा जल-भुन गई। उसने तीव्र स्वर से कहा—"कोई क्या तुम्हारी रोटियों का मोहताज है। आप तो किसी की इज़्ज़त-आबरू नहीं समझते। इस घर में जो भी आएगा, अपमानित होकर जायगा। यह तो इस घर की देहरी का प्रभाव है।"

महेंद्रनाथ की आँखें गुस्से से लाल हो रही थीं, किंतु वह चुप रहे। सहनशीलता उनके स्वभाव में ईश्वर ने प्रचुर मात्रा में दी थी।

अपनी बात का उत्तर न पाकर प्रभा और खुल चली। बोली—"न-जाने क्यों लोग इस घर में टुकड़े तोड़ने पहुँच जाते हैं। इस घर के आदमी क्या हैं, मानो वाइसराय के अवतार हैं। अपना अपमान कराना हो, तो इस घर में रहे।"

महेंद्रनाथ बोल उठे—"तो तुम भी इस घर को क्यों नहीं छोड़

देतीं। जो भला हो, उसके साथ चली जाओ। मुझे भी छुट्टी मिले।"

प्रभा के लिये अब अधिक सुनना असह्य था। उसने चिल्लाकर कहा—"क्या कहा, फिर तो कहना! मैं तुम्हें भारू हो रही हूँ। अच्छा, यह तो मुझे आज ही मालूम हुआ . "

बात काटकर महेंद्र ने कहा—"और मुझे भी आज ही मालूम हुआ है।"

पैर पटककर प्रभा ने कहा—"बस, चुप रहिए। यदि नहीं रखना है, तो मैं आज ही इस घर को त्याग दूँगी। ज्यादा अपमान करने की जरूरत नहीं।"

महेंद्र फौरन् बोल उठे—"हाँ, जाओ। मुझे भी अब कभी तुम्हारी जरूरत न पड़ेगी।'

प्रभा चल दी। दरवाजे पर पहुँचने पर महेंद्र ने चिल्लाकर कहा—"और साथ में रघुवर को भी लेती जाना।'

पता नहीं, प्रभा ने यह सुना या नहीं।

---

[१३]

जिस समय कुबेरचंद गाड़ी पर सवार होकर नदी-तट से रायपुर की ओर रवाना हुए, उन्हें सामने से एक गाडी आती हुई दिखाई दी। उन्होंने समझा, शायद महेंद्रनाथ ने उनके लिये सवारी भेजी हो, अतएव उन्होंने गाडी रोक दी, और दूसरी गाड़ीवाले को हाथ उठाकर रोकने का इशारा किया। गाड़ी रुक गई। कुबेर ने गाडी के निकट पहुँचकर देखा कि रामजीवन महाशय गाड़ी से सिर निकाल-कर झाँक रहे हैं।

कुबेर ने समझा, शायद रामजीवन कहीं बाहर जा रहा हो। उन्हें देखकर रामजीवन गाडी से उतर पडा, और बोला—"कहिए भाई साहब! क्या फिर रायपुर आ गए?"

कुबेर के हृदय में एक बार फिर उसके प्रति घृणा उत्पन्न हुई। वह बोले—"यों ही ज़रा रज्जो को देखने आ गया हूँ। तुम कहाँ चले?"

"मे—मैं क्या यहाँ बसने आया था? भला पूछो, मैं कौन हूँ। मैं ता—मै तो—अपनी तबियत का राजा हूँ। जी नहीं लगा, चल दिया। क्यों न भाई साहब? ठीक कह रहा हूँ न?" कहकर राम-जीवन हँस पड़ा।

कुबेर ने सोचा, अवश्य कोई घटना हुई है। फिर बोले—"और कौन है तुम्हारे साथ?"

रामजीवन बोला—"हम सभी तो हैं। और—और प्रभा जीजी भी तो ..." कहते-कहते वह रुक गया।

कुबेर ने सोचा अब बात करना ठीक नहीं। वहीं चलकर रहस्य खुलेगा। कोई गहरी बात मालूम पड़ रही है।

रामजीवन फिर बोला—"अच्छा, चलता हूँ। नमस्ते भाई साहब।"

"नमस्ते कहकर" कुबेर अपनी गाड़ी पर चढ़ गए। दोनो गाड़ियाँ चल दीं।

रायपुर पहुँचने पर उन्हें काफ़ी सन्नाटा दिखाई पड़ा। वह सीधे महेंद्रनाथ के पास जा पहुँचे। महेंद्रनाथ इस समय बड़े चिंतित भाव से आराम-कुरसी पर लेटे थे। कुबेर को देखकर उठ खड़े हुए।

"क्या हाल है रज्जो का ?" बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे हुए ही कुबेर ने पूछा।

"हालत ठीक नहीं।" महेंद्रनाथ ने धीरे से कहा।

कुबेर चुप रहे। महेंद्रनाथ ने कहा—"कुछ सुमेरचंद का पता चला ?"

"हूँ।" कहकर कुबेर चुप रहे।

महेंद्रनाथ कहते गए—"क्या घर वापस आ गए ?"

"नहीं।"

"कानपुर में हैं ?"

"नहीं। लखनऊ में कदाचित् रहते हैं।"

"आप लखनऊ गए थे ?"

"नहीं। जाने की इच्छा कर रहा था, किंतु इधर चला आया।"

महेंद्रनाथ चुप हो गए। उनके हृदय में यह धारणा और भी दृढ़ हो गई कि कुबेरचंद सुमेर का पता नहीं लगाना चाहते।

फिर कुछ बातचीत नहीं हुई। कुबेरचंद वहाँ से उठकर रज्जो के

कमरे मे गए। रज्जो ने उन्हें देखकर उठने की चेष्टा की, किंतु उठ न सकी।

"लेटी रहो बेटी। अब तुम्हारा कैसा जी है?" कुबेरचद ने कहा।

"अच्छी हूँ।" रज्जो ने लज्जा से दूसरी ओर मुँह फेरकर कहा।

कुबेरचद चुप रहे। रज्जो भी शात लेटी रही।

"सुमेर का पता चल गया है। कानपुर चलोगी बेटी?" कुबेर ने गभीरता-पूर्वक कहा।

रज्जो चुप रही। कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"किरण दिन-रात तुम्हारी याद करती है। कानपुर चलोगी? मैं तुम्हें ले जाने के लिये ही आया हूँ।"

रज्जो के नेत्र धीरे-धीरे सजल हो रहे थे। कुबेर ने कहा—"अब तुम आराम करो बेटी। मैं अभी ठहरूँगा। फिर तुमसे बात करूँगा।"

कुबेर उठकर बाहर आ गए।

दूसरे दिन महेद्रनाथ ने उनसे कहा—"अब सुमेरचद का ढूँढ़कर लाना ही पडेगा। यदि आपको इस कार्य मे कठिनाई जान पडे, तो मैं भी आपके साथ चल सकता हूँ। इस कार्य में देर करने से मुझे घोर विपत्ति का सामना करना पडेगा।"

कुबेर ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"बात तो आप ठीक कहते हैं महेद्रनाथजी! किंतु मुझमें सदा से साहस की कमी रही है, यदि आप चल सकें, तो सभव है, सफलता मिल जाय।"

"तो मुझे चलने में कोई आपत्ति नहीं। किंतु इसमे शीघ्रता करनी चाहिए।" महेंद्रनाथ बोल उठे।

अत मे दोनो का लखनऊ जाना निश्चित हो गया।

शाम को महेंद्रनाथ ने रंज्जो से जाकर कहा—"हम लोग सुमेरचद को लाने के लिये लखनऊ जा रहे हैं बेटी! शीघ्र ही लौटेंगे।"

रज्जो ने थोड़ी देर चुप रहकर कहा—"आप क्यों इतना कष्ट कर रहे हैं चाचाजी! जिसे आना होगा, अपने आप आ जायगा। आप लोग ..."

बात काटकर महेंद्रनाथ ने कहा—"मेरे लिये तो अब तुम्हीं हो। मैं तो तुम लोगों को सुखी देखकर ही मरना चाहता हूँ।"

कहते-कहते उनके नेत्रों मे आँसू आ गए। रज्जो भी रो पड़ी। उसने आँचल से आँसू पोछते हुए कहा—"आप मेरे लिये क्यों दुखी हो रहे हैं चाचाजी! मैं बहुत सुखी हूँ। आप अपने हृदय में . ."

महेंद्रनाथ ने कहा—"अब तुम आराम करो। यदि ईश्वर चाहेगा, तो सब कुछ अच्छा ही होगा।"

उनके जाने के पहले एक दिन रात्रि में हेमप्रभा ने उनसे आकर पूछा—"क्यों महेंद्र! तुमने बहू को क्यों मा के घर भेज दिया?"

महेंद्रनाथ चौंक पड़े। आज इतने दिन बाद भाभी ने यह प्रश्न कैसे किया? क्या उनके हृदय में किसी प्रकार का संदेह पैदा हुआ है?

उन्हें चुप देखकर हेमप्रभा ने कहा—"मुझसे किसी प्रकार की बात छिपाना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं। मैं तो प्रारंभ ही से तुम्हें सुखी देखने की इच्छुक रही हूँ महेंद्र!"

महेंद्र नीचा सिर किए बैठे रहे, फिर बोले—"वह हमारे यहाँ रहने योग्य नहीं है भाभी! उसने हमारे परिवार को कलंकित किया है। इस विषय में चुप रहना ही अच्छा है।"

हेमप्रभा ने कहा—"किंतु बिना किसी दृढ़ प्रमाण के किसी के चरित्र पर सन्देह करना तो ठीक नहीं है महेंद्र। प्रभा ऐसी स्त्री नहीं है।"

महेंद्र के चेहरे पर थोड़ा क्रोध झलकने लगा। उन्होंने एक श्वास लेकर कहा—"वह नीच स्त्री है। मुझसे अधिक उसके विषय में दूसरा नहीं जान सकता। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ भाभी! इस विषय में अधिक बात करके मुझे दुखी न करो।"

हेमप्रभा चुप हो गई। बात पलटने की नीयत से उसने कहा—"सुना है, सुमेर का चरित्र बहुत गिर गया है। यदि उसका सुधार कर सको, तो एक बार फिर से इस घर की राज्य-श्री लौट सकती है।"

महेंद्र ने ठंडी साँस लेकर कहा—"किंतु कुबेर पर मेरा अधिक विश्वास नहीं, इसीलिये तो साथ जा रहा हूँ। न-जाने क्यों मेरा मन उन पर अधिक विश्वास करने को नहीं चाहता।"

हेमप्रभा ने कहा—"किंतु इसका क्या कारण हो सकता है। हम लोगों ने तो कोई ख़ास दुश्मनी उनसे की नहीं।"

महेंद्रनाथ बोल न सके। वह जानते थे, इस घर में कई बार उनका अपमान किया गया है। प्रकट में बोले—"क्यों नहीं। एक बार जब वह दीदी का पत्र लेकर यहाँ आए थे, तो बिना किसी प्रकार की सहायता के ही उन्हें यहाँ से टाल दिया गया था। अपने यहाँ से उन्हें हटाने में भी तो उनका काफ़ी अपमान किया गया।"

हेमप्रभा कुछ सोचकर बोली—"तो उन्हें फिर से यहाँ रख लिया जाय। इससे तो शायद वह अपने पुराने अपमान को भूल जायँ।"

महेंद्रनाथ ने कहा—"यदि ऐसा हो जाय, तो अच्छा ही है। मैं इस विषय में उनसे बात करूँगा।"

दूसरे दिन सवेरे बातचीत के सिलसिले में महेंद्रनाथ ने यह प्रस्ताव उनके सामने रक्खा। कुबेरचंद हँसकर चुप हो गए।

साश्चर्य उनकी ओर देखकर महेंद्रनाथ ने कहा—"रज्जो की मा आपका बहुत कुछ उपकार करना चाहती है। यह जानकर कि आप कष्ट में होंगे, वह आपको फिर यहीं बुला लेना चाहती है।"

कुबेरचद हँसकर बोले—"मैं आपसे अधिक सुखी हूँ महेंद्रनाथ-जी ! बात यह है कि हमारे और आपके सुख की परिभाषा में काफ़ी अतर है।"

महेंद्रनाथ कुछ समझे नहीं। बोले—"अंतर की क्या बात है ?"

"अंतर यह है कि आप लोग जिसे सुख समझते हैं, वह मेरी दृष्टि में साधारण वस्तु है। वास्तविक सुख तो दूसरी ही चीज़ है। उससे आप लोग बहुत दूर हैं।" कुबेर ने हँसकर कहा।

"हमारे और आपके सुख में अतर क्यों है ?" महेंद्रनाथ ने कुतूहल के साथ पूछा।

"बात यह है कि आप लोग वास्तव में कुबेर हैं, और मैं हूँ केवल नाम का कुबेर।" कहकर कुबेर ठहाका मारकर हँस पड़े।

महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते रह गए। कुबेरचंद ने कहा—"अच्छा, रहने दीजिए ये बातें। अब चलने में देर न कीजिए। आज यहाँ से अवश्य रवाना हो जाना है।"

महेंद्रनाथ उनके मुँह की ओर देखते रह गए। क्षण-भर बाद बोले—"मुझे खेद है, आप मुझमें और अपने में इतना अतर समझते हैं।"

कुबेर फिर हँसे। बोले—"मैं तो कोई अतर नहीं समझता, किंतु आप लोगों को ईश्वर ने जिस श्रेणी में रक्खा है, उसमें रह-कर प्राय आप लोग अपने और दूसरों में बहुत भारी अतर समझने लगते हैं। आप लोगों के लिये दूसरों का जीवन खिलवाड़-सा हो जाता है। आप बुरा तो नहीं मान रहे हैं, जो मैं कह रहा हूँ ?"

महेंद्रनाथ कुछ खिसियाए-से होकर बोले—"नहीं-नहीं, कुबेरचद-जी ! मुझे तो आपकी बातों में बड़ा आनद आ रहा है। मुझे अपनी टीका कभी बुरी नहीं लगी। आप कहते जाइए।"

अब कुबेर जरा गंभीर हो उठे। उन्हें इससे अच्छा अवसर कहने

का भला और कब मिल सकता था। उन्होंने कहा—"बड़े आदमियों के हृदय नहीं होता। धन ही उनका धर्म है। संसार के अन्य निर्धन व्यक्ति उनकी क्रीड़ा की सामग्री के समान हैं। वे अपने धन का किसी व्यक्ति के सम्मान से भी अधिक ऊँचा समझते हैं। धनियों को मैं अधिक श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता।"

महेंद्रनाथ धैर्य-पूर्वक सब कुछ सुनते रहे। अंत में बोले—"आप ठीक कह रहे हैं कुबेरचंदजी! मैं धन का ही अभिशाप अपने ऊपर ओढ़े हुए हूँ। आप सत्य कह रहे हैं।"

कुबेर बहुत कुछ हलके हो चुके थे। वह महेंद्रनाथ को और अधिक कुछ नहीं सुनाना चाहते थे। बोले—"निश्चय ही आपको धन का ही अभिशाप भुगतना पड़ रहा है। आज यदि आप धन तथा ऐश्वर्य के मद में न आकर अपनी बहन पर रक्षा का हाथ रखते, तो आपको इन विपत्तियों का सामना न करना पड़ता। मैं तो बिना कहे नहीं रह सकता कि आशा को पतन के खड्ड में गिराने का श्रेय आपके ही परिवार को है। क्या आप अपनी साधारण-सी सहायता के सहारे उसका उद्धार नहीं कर सकते थे। रज्जो को आज उसी का तो फल भुगतना पड़ रहा है।"

महेंद्रनाथ चुप थे। कुबेर कहते गए—"आपने सदा अपनी समझ से दूसरों को बुद्धि-हीन तथा अपने हाथ का खिलौना समझा है। आप लोगों की इसी नीति ने आपके सारे घर को श्री-हीन कर दिया है। बुरा न मानिएगा महेंद्रनाथजी!"

कुबेर चुप हो गए। महेंद्रनाथ नीचा सिर किए गंभीर मुद्रा में थे। कुबेरचंद ने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा—"उठिए, अब चलने का समय हो गया है।"

महेंद्रनाथ ने कुबेरचंद का हाथ पकड़ लिया, और बोले—"मैं बड़ा दुखी हूँ कुबेरचंदजी! आज आपकी बातों ने मेरे हृदय के

अंधकार को बहुत कुछ दूर कर दिया है। धन ही सारे विनाश की जड़ है। हम लोगों ने आपके प्रति सदैव अनुदारता का परिचय दिया है। आशा है, आप क्षमा करेंगे।"

महेंद्रनाथ ने कुबेर के पैर पकड़ लिए।

"आप क्या कर रहे हैं? मैं तो एक अत्यंत साधारण व्यक्ति हूँ। आप नहीं जानते, मैं कितना बड़ा पापी हूँ।" कहते हुए कुबेरचंद ने अपने पैर हटा लिए।

उसी दिन शाम को दोनो ही लखनऊ रवाना हो गए।

---

[१४]

दूसरे दिन सवेरे सुमेरचंद्र देवेंद्र के घर पहुँच गए। नौकर ने उन्हें बैठक में बैठालकर आशा को सूचना दी।

आशा लिखने को तो लिख बैठी, किंतु सुमेर को आया देख एक बार उसका सारा शरीर काँप उठा। किंतु अब समय न था, तीर तरकश से निकल चुका था। उसने नौकर को बुलाकर कहा—"रामू! मेरा एक काम कर देगा?"

रामू मालकिन का बड़ा भक्त था। बाबू से उसकी ज्यादा न पटती थी। एक बार दूध चुराकर पी जाने पर मालिक ने उसकी धौल-धप्पा से पूजा भी कर दी थी, किंतु मालकिन ने उसे चुपचाप दो रुपए इनाम के देकर सांत्वना प्रदान की थी।

वह झट बोल उठा—'क्या हुकुम है मालकिन?"

आशा को उस पर पूर्ण विश्वास था। वह बोली—"वह बाबू साहब, जो नीचे कमरे में बैठे हैं, उन्हें यहाँ बुला ला। देख, बाबूजी से इसका ज़िक्र न करना। दरवाज़ा अंदर से बंद कर लेना।"

रामू चला गया। आशा की सारी देह काँपी जा रही थी। उसने झटपट धोती बदली, और कमरे में जाकर एक ओर खड़ी हो गई।

रामू सुमेर को लेकर कमरे में आया। पहले तो सुमेर कुछ झिझके, किंतु सामने आशा को देखकर उनका सारा बदन सिहर उठा। उनके मुँह से निकल पड़ा—"कौन? आशा! तुम!!"

आशा दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़ी। सुमेर बोल उठे—

"आशा ! तुम !! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ ? तुम यहाँ कैसे ? क्या-क्या • •• •• "

आशा बोल उठी—"हाँ, मैं ही देवेंद्र की स्त्री हूँ। क्या विश्वास नहीं होता ?'

सुमेर किं-कर्तव्य-विमूढ़ की तरह खड़े रहे। क्षण-भर बाद उनके मुँह से निकला—"आशा ! तुम तो ऐसी न थीं। तुमने मुझे अच्छा धोखा दिया। अब क्या कहना चाहती हो ? क्या देवेंद्र से तबियत भर गई ?"

आशा रो रही थी। सुमेर ने फिर कहा—"क्या कहना चाहती हो ? मैं अधिक समय तक इस दशा में नहीं खड़ा रह सकता, बोलो।"

आशा का मुँह खुला। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—"मेरे जीवन की सबसे बड़ी कमज़ोरी तुम हो सुमेर ! क्या मेरे पास इसके सिवा और कोई उपाय था ?"

सुमेर ने क्षण भर चुप रहकर कहा—"किंतु अब समय नहीं रहा। मैं और सारा संसार तुम्हें मरा हुआ समझता है। क्या अच्छा होता, यदि तुम इसकी अपेक्षा जाह्नवी के गर्भ में समा गई होतीं। किंतु खेद !"

आशा निरंतर रो रही थी। सुमेर ने फिर कहा—"तुम मेरी प्रतीक्षा कर सकती थीं। मैं तुम्हारे लिये सर्वस्व छोड़कर लौटा था, किंतु • "

सुमेर चुप हो गए। आशा ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—"तुम्हारे कल्याण के लिये मेरे लिये इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न था। मैं कलंकिनी हूँ, किंतु आत्महत्या करना मेरे साहस के बाहर की बात है। मैं मर न सकी।"

सुमेर ने गंभीरता से कहा—"तभी तो उस पतित की उपपत्नी

चनने का लोभ तुमसे न त्यागा गया। देवेंद्र से तो खूब प्रेम करती होगी ? क्यों आशा ?"

आशा चुप थी। प्राय भावों का आधिक्य मनुष्य को अपनी परिस्थिति स्पष्ट करने में अयोग्य बना देता है। मनुष्य कहना कुछ चाहता है, किंतु जितना ही वह अपने को छुड़ाना चाहता है, प्राय उतना ही उसमें फँसता चला जाता है।

उसे चुप देखकर सुमेर ने कहा—"और कुछ कहना है ?"

आशा सुमेर के पैरों पर गिर पड़ी, किंतु सुमेर न डिगे। उन्होंने उसे उठाकर अलग कर दिया, और कहा—"अब समय नहीं है। मुझे जाने दो।"

वह उठ खड़ा हुआ। आशा ने उसके निकट आकर कहा—"मैं अपराधिनी हूँ। क्या मुझे क्षमा न कर सकोगे सुमेर ?"

सुमेर ने जाने की चेष्टा करते हुए कहा—"किंतु तुम्हें अब आवश्यकता ही क्या है ? दिन तो मज़े से कट रहे हैं।'

"क्या मेरे पास कुछ देर के लिये भी ठहरना आपके लिये कठिन है ? क्या मैं अब इतनी पराई हो गई हूँ सुमेर ?" कहते हुए उसने सुमेर का हाथ पकड़ लिया।

सुमेर ने हाथ छुड़ाया नहीं। वह खड़ा रहा। आशा ने फिर कहा—"तुम मुझे भरपूर दंड दे सकते हो, किंतु इस प्रकार नहीं। मैं एक बार जी खोलकर अपना अपराध तुम्हारे सामने रख देना चाहती हूँ। मैं तुम्हारे योग्य नहीं, किंतु अपने अपराधों को कह-कर उनकी क्षमा माँगे बिना मुझे जीवन-भर शांति न मिल सकेगी, क्या मेरी सुन सकोगे सुमेर?"

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—"किंतु मुझे भी सोचने का अवकाश चाहिए। मैं अब यहाँ न ठहर सकूँगा। यदि कुछ स्थिर कर सका, तो फिर मिल सकूँगा, नहीं तो बस।"

सुमेर कमरे के बाहर हो गया। आशा कुछ देर तक खड़ी रही, फिर एक श्वास लेकर पलँग पर जाकर लेट रही।

रामू ने आकर कहा—"मालकिन! नए बाबू साहब, जो अभी आए थे, तुम्हें नीचे बुला रहे हैं।"

आशा फ़ौरन् नीचे पहुँची। सुमेर बैठक में कुरसी पर सिर झुकाए बैठा था। आशा चुपचाप पास जाकर खड़ी हो गई।

"किसी समय मेरे मकान में आकर मुझसे मिल सकती हो? इस स्थान को मैं निरापद् नहीं समझता।" सुमेर ने कहा।

"किंतु मैं कैसे वहाँ जा सकूँगी? मेरे लिये तो यह मकान छोड़कर कहीं जाना मृत्यु से भी भयंकर है।" आशा धीरे से बोली।

"हूँ।" कहकर सुमेर खड़े हो गए। आशा ने फिर कहा—"यदि आप फिर आ सकें, तो मैं आपके साथ चल सकूँगी।"

"चेष्टा करूँगा।" कहकर सुमेर चल दिए।

आशा पलँग पर जाकर लेट रही। वह जितना ही अपने मन को क़ाबू में रखने की चेष्टा करती थी, उतना ही उसका हृदय बाहर निकला पड़ता था। उसने सोचा, अब क्या उपाय है। किस मार्ग पर चलना चाहती थी, और किधर जा निकली देवेंद्र! क्या वह मेरे पैरों पड़ने गया था। मैं ही तो जान-बूझकर उसके गले पड़ी। अब! क्या उपाय है। और सुमेर। मेरे देवता। क्या तुम छोड़े जा सकोगे। तुम मेरे लिये सब कुछ छोड़कर आए हो। हाय मेरी परिस्थिति!

शाम तक उसकी यही दशा रही। देवेंद्र आया। आशा के पास जाकर उसने कहा—"कैसी तबियत है आशा? क्या ज्वर आ गया?"

आशा को न-जाने क्यों देवेंद्र का आना अच्छा न लगा। वह चुपचाप पड़ी रहना चाहती थी। उसने कहा—"आज सबेरे

से ही तबियत ठीक नहीं मालूम पड़ती। मैं कुछ समय के लिये सोना चाहती हूँ।"

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए देवेंद्र ने कहा—"कुछ खाओगी नहीं? दूध पी लो।"

"नहीं।' कहकर आशा ने आँखें मूँद लीं। देवेंद्र उठकर बाहर चला गया।

थोड़ी देर में डरते-डरते रामू ने आकर आशा के कान के पास कहा—"बहूजी! सबेरेवाले बाबूजी आए हैं। हमारे बाबूजी से बैठक में बैठे हुए बातें कर रहे है।"

"आशा चौंककर उठ बैठी। उसने सोचा, सुमेर उनसे मिलने क्यों आए? हे भगवान्! कहीं और कुछ तो नहीं होनेवाला है। यह उनसे मिलने क्यों आए।"

उससे लेटे न रहा गया। वह उठकर नीचे पहुँची। परदे की ओट से झाँककर जो कुछ उसने देखा, उससे उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

उसने देखा, कुबेर तथा उसके मामा महेंद्रनाथ देवेंद्र से बैठे हुए बातें कर रहे है। वह वहीं खड़ी रही।

देवेंद्र कह रहा था—"हैं तो वह लखनऊ में ही, लेकिन इधर कई रोज़ से मेरी भेंट नहीं हुई।"

कुबेर ने कहा—"तुम्हें उसका घर तो मालूम ही होगा।"

"मुझे तो नहीं मालूम, मेरे एक मित्र घोष बाबू हैं, उन्हें उनके घर का पता मालूम है। मैं कल आपसे उनकी भेंट करा दूँगा। आज आप मेरे यहाँ ही विश्राम कीजिए।"

महेंद्रनाथ ने कहा—"आपकी बड़ी कृपा होगी। रज्जो की हालत दिन-पर-दिन गिरती ही जा रही है, यदि शीघ्र ही उनका पता न चला, तो सर्वनाश की सम्भावना है।"

"मैं पूरी चेष्टा करूँगा। और मिलने पर उन पर ज़ोर डालूँगा कि वह भले मनुष्यों की तरह आपके साथ चले जायें। किसी भले आदमी की लडकी का जीवन नष्ट कर देना क्या अच्छी बात है। फिर सुमेर तो बहुत भला लडका है।" देवेंद्र ने परम आत्मीयता दिखलाते हुए कहा।

"हाँ, किंतु भाग्य में लिखा हुआ कौन मेट सकता है। अब भी यदि इनकी बुद्धि ठिकाने लग जाय, तो दोनो घरों का सर्वनाश रुक सकता है।" महेंद्रनाथ ने एक साँस लेकर कहा।

"देखिए, कल मिलने से पता चलेगा, अब विश्राम कीजिए। रामू! आप लोगो के विश्राम का प्रबंध कर।" देवेंद्र ने उठते हुए कहा।

कुबेर को देवेंद्र में इस प्रकार का आशातीत सुधार देखकर आश्चर्य था। उसके चले जाने पर महेंद्र ने पूछा—"क्यो भाई कुबेरचंदजी! यह है कौन महाशय?"

कुबेर ने उत्तर दिया—"यह वही महाशय हैं, जिनके चंगुल से आशा को छुड़ाने के लिये उस महाभयंकर रात्रि में मुझे आपके पास जाना पडा था।"

महेंद्रनाथ ने एक साँस ली, और चुप हो रहे।

कुबेरचंद ने भी एक साँस ली, और आशा की स्मृति को फिर से हृदय में दफना दिया।

उन्हें क्या मालूम था कि आशा भी पास खडी हुई थी, और वह भी एक दर्द-भरी श्वास लेकर वहाँ से चली गई।

* * *

रात्रि में देवेंद्र ने आशा से कहा—"कुबेर आए है।"

"हूँ।" कहकर आशा सोने का बहाना करने लगी।

देवेंद्र ने फिर कहा—"रज्जो मरणासन्न अवस्था में है, अतएव सुमेर को मनाकर ले जाने के लिये ही आए हैं।"

आशा उस समय खुर्राटे ले रही थी, शायद देवेंद्र से छुट्टी पाने के लिये।

---

[१५]

आशा के लिये फिर कठिन परीक्षा आ उपस्थित हुई। जिस बात को लेकर उसने कुबेर का घर त्यागा था, फिर वही समस्या उसके सामने थी। अभी थोड़ी देर पहले उसने अपने को फिर सुमेर के साथ ले पटकने का दृढ़ विचार कर लिया था। उसने यह निर्णय कर लिया था कि यदि सुमेर ने मुझे शरण दी, तो मैं देवेंद्र को त्याग दूँगी, किंतु कुबेर ने वहाँ पहुँचकर फिर उसके हृदय में हाहाकार उत्पन्न कर दिया। उसे यह दृढ़ विश्वास था कि मैं सुमेर को अब लौट जाने के लिये कभी राज़ी न कर सकूँगी। हाय! आज यदि उनसे भेंट न हुई होती, तो कितना अच्छा होता? वह बड़ी आसानी से रायपुर चले जाते, किंतु अब? मैं क्यों उनके कल्याण-मार्ग का रोड़ा बनकर उत्पन्न हुई? अब क्या हो? कैसे उन्हें रायपुर भेजकर उनका सर्वनाश रोका जाय? मैं कभी उनका अहित न होने दूँगी। यदि मैं उन्हें कोरा उत्तर दे दूँ, तो? किंतु मेरा हृदय क्या ऐसा कहने देगा? क्या करूँ?

आशा रात-भर करवटें लेती रही। वह कुछ भी निर्णय न कर सकी। तड़के ही उसे देवेंद्र ने आकर उठाया—

"तबियत कैसी है अब तुम्हारी?" उसने पूछा।

"ठीक है।" आशा ने लेटे-ही-लेटे कहा।

"मैं जरा सुमेर की तलाश में उन लोगों के साथ जा रहा हूँ। शायद देर से लौटना हो। क्या डॉक्टर को साथ लेता आऊँ।" देवेंद्र ने पूछा।

"नहीं। मेरी तबियत अब बिलकुल ठीक है। आप जाइए।" आशा ने जवाब दिया।

देवेंद्र के चले जाने पर वह उठी। हाथ-मुँह धोकर उसने दूध पिया, और फिर लेट गई। उसके पास सिवा सोच और चिंता के और कोई अन्य कार्य ही न था।

"मै एक बार फिर उन्हें बचाने की चेष्टा करूँगी। यदि उन्होंने न माना, तो इस बार आत्महत्या ही मेरा अंतिम मार्ग होगा।" आशा बड़बड़ा उठी।

रामू ने आकर उसका ध्यान भंग किया। बोला—"लीजिए बहूजी! आपका पत्र।"

आशा ने चौंककर पत्र ले लिया। पत्र में लिखा था—

"प्रिय आशा,

बहुत कुछ सोचने-विचारने के पश्चात् मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है। यदि हो सके, तो आज ही रात को घर छोड़ने के लिये तैयार रहना। मैं गली के बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।

तुम्हारा सुमेर।"

आशा ने एक श्वास ली, और कहा—"कौन तुझे दे गया है यह पत्र रामू?"

"खुद बाबूजी ने आकर दिया, और चले गए।" रामू धीरे से बोला।

"तूने उन्हें रोका नहीं?" आशा ने पूछा।

"मैंने तो बहुत कहा, लेकिन वह ठहरे ही नहीं।" रामू ने जवाब दिया।

"आशा चुप हो गई। उसने सोचा, अब क्या होगा? हाय! क्या कुबेर दादा को फिर निराश होकर लौटना पड़ेगा? आखिर उन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा है। उनके उपकारों का बदला क्या

जीवन-भर इसी प्रकार चुकाना पड़ेगा? किंतु—किंतु अब करूँ क्या? वह दो-चार रोज़ पहले क्यों न आए। अब ”

दोपहर को देवेंद्र, कुबेर तथा महेंद्रनाथ लौटे। आशा ने देवेंद्र से पूछा—“सुमेर से भेंट हुई?”

“हाँ। लेकिन उसने तो जाने से साफ इनकार कर दिया। हम लोगों ने बहुत सिर पीटा, किंतु उसका कोई भी तो प्रभाव न पड़ा।” देवेंद्र ने जवाब दिया।

“अब क्या होगा?” आशा पूछ बैठी।

“कुछ समझ में नहीं आता कि क्या किया जाय। कुबेर ने तो आशा छोड़ दी है, किंतु महेंद्रनाथ अभी फिर उनसे मिलेंगे। देखें, ऊँट किस करवट बैठता है।” कहते हुए देवेंद्र ने कपड़े उतारे।

“वह कहते क्या हैं?” आशा ने पूछा।

“सारी बातें उनकी ऊल-जलूल हैं। कभी कुछ कहते हैं, कभी कुछ।” देवेंद्र ने उत्तर दिया।

“लौटने को क्यों नहीं कहते।” आशा ने फिर पूछा।

“कह तो दिया, उनके जवाब सब बेतुके-से हैं। कभी कहते हैं, तुम्हें और पहले आना चाहिए था। कभी कहते हैं, मेरी उस ओर रुचि नहीं। ऐसे बेवक़ूफ़ आदमी से बात करके सिर्फ़ समय नष्ट करना है।” देवेंद्र ने किंचित झल्लाकर कहा।

आशा चुप हो गई। वह यही सुनना चाहती थी। उसने भली भाँति समझ लिया कि उनकी सारी कमज़ोरी सिर्फ़ मैं ही हूँ। उसने एक लंबी साँस ली।

“भोजन के पश्चात देवेंद्र कुबेर तथा महेंद्रनाथ के पास चला गया, किंतु आशा का दग्ध हृदय वेदना से ओत-प्रोत हो रहा था। उसे आज शाम के पहले ही सब कुछ तय कर लेना है। उसने सोचा, मुझे एक बार उनसे बातें करने का मौक़ा और मिलना चाहिए था।

किंतु यदि मैं उन्हें समझा-बुझाकर रायपुर जाने के लिये राज़ी भी कर सकी, तो भी मेरे यहाँ लौटने का मार्ग तो बंद ही हो जायगा। मैं क्या बहाना करके उनके पास जा सकूँगी? हाय! उन्होंने मुझे कैसी बुरी परिस्थिति में डाल दिया। आज शाम को यदि वह आए, और मैं उनसे न मिली, तो और भी अनर्थ होगा। कैसे मिलूँ?"

शाम होने में अब देर ही क्या थी। उसने देवेंद्र से पूछा—"क्या शाम को फिर आप लोग सुमेर से मिलने जायँगे?"

देवेंद्र ने उत्तर दिया—"नहीं। उसने कल सवेरे मिलने को कहा है। उसने हम लोगों से स्पष्ट कह दिया कि वह आज शाम को हम लोगों से नहीं मिल सकता।"

आशा का यह तीर भी व्यर्थ गया। उसने सोचा, तब अवश्य अनर्थ होकर ही रहेगा। हाय! अब इस घर में मैं थोड़ी ही देर की मेहमान हूँ।

आज देवेंद्र ने कुबेर तथा महेंद्रनाथ को विशेष रूप से अपने घर में दावत दी थी। घोष बाबू तथा उसके दो-एक और भी मित्र आमंत्रित थे। आशा का मन किसी दूसरी ओर था, किंतु दिखाने के लिये वह नौकरों से काम ले रही थी।

लगभग ७ बजे घोष बाबू तथा अन्य सज्जन भी आ पहुँचे। आशा का मन बैठता जा रहा था। जैसे-जैसे वह इस घर को छोड़ने की तयारी में थी, वैसे-ही-वैसे उसका हृदय किसी भावी आशंका से व्यथित-सा हुआ जा रहा था।

वह बार-बार ऊपर छत पर जाकर गली की ओर देख रही थी। उसे एक बार ऐसा मालूम पड़ा, मानो गली के मोड़ पर कोई खड़ा है।

नीचे से देवेंद्र ने पुकारा—"रामू! बहूजी से पूछो, अब कितनी देर है?"

थोड़ी ही देर मे नौकरानी रधिया ने बैठक में आकर ऊधम मचा दिया। देवेंद्र, कुबेर, महेंद्रनाथ तथा अन्य सभी व्यक्ति उठकर खड़े हो गए।

देवेंद्र ने चिल्लाकर कहा—"क्या बकती है ? साफ़-साफ क्यों नहीं कहती, क्या हुआ ?"

रधिया ने सिटपिटाकर कहा—"बाबूजी ! सारा घर ढूँढ़ मारा, बहूजी का पता नहीं चलता।"

देवेंद्र ने उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया—"हरामज़ादी क्या बक रही है। घर में नहीं हैं, तो क्या तेरे सिर में समा गई। चल यहाँ से।"

तमाचा खाकर रधिया की रही-सही सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। हाथ जोड़कर बोली—"बाबूजी, सारा घर देख डाला। रामू कहता है—रामू "

"क्या कहता है रामू ? बोलती क्यों नहीं।" देवेंद्र ने पूछा।

रधिया ने सारा साहस इकट्ठा करके कहा—"रामू कहता है कि बहूजी कहीं चली गई। मैंने उन्हें दरवाज़े से बाहर जाते देखा है।"

देवेंद्र झटपट अंदर पहुँचा। कुबेर तथा महेंद्रनाथ आदि चुप रह गए। सारा रंग उखड़ गया।

घोष बाबू अंदर घुस गए। देवेंद्र पागल की तरह चारों ओर कोना-कोना छान रहा था। रामू की गर्दन पकड़कर उसने कहा—"बता साले ! बहूजी कहाँ गई। मै तेरी खाल खींच लूँगा, अगर तूने जरा भी बात छिपाई। बता, जल्दी बता।"

रामू ने काँपते हुए कहा—"बाबूजी, मेरा इसमें क्या कुसूर ? मैंने सिर्फ़ उन्हें दरवाज़े के बाहर जाते देखा है। जब बड़ी देर तक वह नहीं लौटीं, तो मैंने आकर रधिया से कहा। मेरा क्या दोष है बाबूजी ! मै बाल-बच्चेवाला आदमी हूँ, झूठ नहीं बोलूँगा।"

देवेंद्र पागल हो रहा था। उसने इतना सुनकर भी दो-चार हाथ गरीब रामू पर और जड़ दिए, तथा हाँफता हुआ पलँग पर बैठ गया।

"आप घबड़ाते क्यों हैं देवेंद्र बाबू ? मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ। कोतवाली में रिपोर्ट भी लिखनी पड़ेगी (Married women को entice away) कर ले जाना क्या मामूली बात है। सरकार केस चलाएगा।" घोष बाबू ने देवेंद्र की पीठ पर हाथ रखते हुए कहा।

देवेंद्र कुछ बोला नहीं। वह सीधा पलँग पर लेट गया। कुबेर तथा महेंद्रनाथ बिना खाए-पिए ही लेट रहे। अन्य लोग भी लौट गए।

रात्रि में महेंद्रनाथ ने कुबेर से पूछा—"मामला कुछ समझ में नहीं आया।"

कुबेर ने लेटे-ही-लेटे धीरे से कहा—"संसार विचित्र बातों का घर है। भगवान् जाने, कौन क्या करता है।"

महेंद्रनाथ ने क्षण-भर चुप रहकर कहा—"क्या देवेंद्र की स्त्री अच्छे चरित्र की नहीं थी ?"

कुबेर ने धीरे से जवाब दिया—"हो सकता है। किसी ज़माने में उसकी स्वयं भी तो चरित्र-भ्रष्टों में गणना थी। संभव है, स्त्री भी ऐसी हो।"

महेंद्र चुप रहे। उन्हें प्रभा की याद आई। एक लंबी साँस खींचकर उन्होंने कहा—"हाँ भाई! संसार में बड़े दुःख हैं।"

कुबेर ने क्षण-भर बाद कहा—"अब यहाँ से चल देना ही ठीक है। सुमेर से अधिक आशा नहीं।"

महेंद्रनाथ उस समय प्रगाढ़ चिंता में मग्न थे। उन्होंने शायद कुबेर की बात सुनी ही नहीं।

एकाएक महेंद्रनाथ पूछ बैठे—"क्यो भाई, आशा का भी कुछ पता चला ?"

कुबेर मानो सोते से जाग पड़े । बोले—"आशा ने निश्चित ही आत्महत्या कर ली । यह भी हमारे ही कर्मों का फल कहा जा सकता है ।"

महेंद्रनाथ फिर कुछ न बोले ।

रात्रि में कुबेर को ऐसा मालूम पड़ा, मानो आशा आकर उनके सिरहाने खड़ी हो गई ।

कुबेर ने देखा, मानो आशा के दोनो हाथ रक्त-रंजित थे ।

कुबेर ने पूछा—"यह क्या किया आशा तुमने ?"

आशा मुस्किराई । उसने दोनो हाथों की हथेलियाँ कुबेर के सामने बढ़ा दीं ।

कुबेर ने घबड़ाकर आँखें मींच लीं । उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई उनका हाथ पकड़े हुए किसी गहरे गड्ढ की ओर खींचे लिए जा रहा है । कुबेर ने देखा, महेंद्रनाथ थे ।

कुबेर ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा की, किंतु हाथ लोहे के सदृश दृढ़ होते गए । उन्होंने देखा, सामने एक शव पड़ा हुआ उनकी ओर घूर रहा है । उन्होंने पहचाना ।

शव रज्जो का था । चारो ओर से भीषण चीत्कार, आर्तनाद तथा करुण-क्रंदन उन्हें सुनाई पड़ा । कुबेर चिल्ला उठे ।

महेंद्रनाथ ने झट चारपाई से उठकर कुबेर का हाथ पकड़ लिया, और कहा—"क्यों कुबेरचंदजी ! क्या स्वप्न देख रहे हो ?"

कुबेर की निद्रा टूट गई । वह घबराकर उठ बैठे । स्वप्न की भाँति उन्होंने झटका देकर हाथ छुड़ा दिया ।

कुबेर उठकर खड़े हो गए । उन्हें यह न समझ पड़ा कि वह स्वप्नावस्थामें हैं या जाग्रत् ।

महेंद्र ने पूछा—"क्या स्वप्न में डर गए ? उठो, मुँह-हाथ धोकर भगवान् का नाम लो।"

अब कुबेर को होश हुआ। वह बोले—"बड़ा भयंकर स्वप्न था भाई साहब! मेरा हृदय अब तक धड़क रहा है।"

थोड़ी देर बात करके कुबेर फिर लेट गए। उन्हें अब सो जाने का साहस ही न हुआ। वह लेटे-लेटे भगवान् का स्मरण करने लगे।

न-जाने क्यों उन्हें महेंद्रनाथ से बड़ा डर लगने लगा।

तड़के ही कुबेर ने शय्या त्याग दी।

---

[१६]

आशा ने कहा—"आखिर आप मुझसे चाहते क्या हैं ? इस प्रकार जीवन बरबाद कर डालने से आपको क्या आनंद मिलेगा ?"

सुमेर चुप रहे। आशा ने फिर कहा—"बोलिए, आप क्या चाहते हैं ? इस बात को खूब समझ लीजिए कि मैं किसी प्रकार का भी आपका अहित न होने दूंगी। आपको कुबेर दादा के साथ रायपुर लौट जाना पड़ेगा।"

"और तुम क्या करोगी ? क्या फिर देवेंद्र के पास लौटकर जाना है। हृदय की बात कहो न ?" सुमेर ने स्तब्ध भाव से कहा।

"मैं ? मैं क्या करूंगी, यह आपको बतलाना न पड़ेगा। मेरे लिये अब कहीं स्थान नहीं। रायपुर लौट जाने का वचन देते हो ? बोलो, एक मेरी यह बात स्वीकार कर सकते हो ?" आशा ने कातर होकर पूछा।

— "लौटूंगा, किंतु तुम्हें मिट्टी मे मिलाकर नहीं। मैंने सदा से तुम्हारा बड़ा अहित किया है आशा ! मैं तुम्हें बरबाद होने से बचा सकता था, किंतु वासना के उन्माद मे बहकर मुझे यह न मालूम था कि तुम मेरी आराध्य हो उठोगी। मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकता हूँ आशा ? नहीं, कभी नहीं ?"

आशा सिर झुकाकर बैठ रही। सुमेर ने फिर कहा—"अब तुम्हारे सिवा मेरे जीवन का संगी न कोई हो सकता है, और

न किसी को ऐसा अधिकार है। तुम मेरी हो, मेरी ही रहोगी। मैं रायपुर नहीं जाऊँगा।"

आशा के आँसू गिर-गिरकर उसका आँचल भिगो रहे थे। उसने एक बार सिर उठाकर सुमेर की ओर देखा। सुमेर की दृष्टि उसी की ओर थी।

"किंतु मैं तुम्हारे साथ न रह सकूँगी। निरीह, निर्दोष तथा पति-परायण स्त्री के रक्त में मैं अपने हाथ न रँग सकूँगी। यदि आशा को अपनी ही रखना है, तो केवल एक ही शर्त है।" आशा ने किंचित दृढ़ होकर कहा।

"वह क्या ?" सुमेर के मुँह से निकला।

"कल तुम्हें कुबेर दादा के साथ रायपुर चले जाना पड़ेगा। उसके उपलक्ष्य में आशा तुम्हारी चिर दासी रहेगी। मेरे स्वामी ! आशा तुम्हारी ही रहेगी, किंतु इसी शर्त पर।" आशा ने कह डाला।

"यह पहेली मेरी समझ में नहीं आई। ज़रा स्पष्ट कहो न ?" सुमेर ने उतावलेपन से कहा।

आशा क्षण-भर चुप रही। कदाचित् वह अपनी वाक्‌शक्ति का संचय कर रही थी। यह उसके जीवन के शेष भाग का स्थायी सौदा था।

सुमेर ने फिर कहा—"बोलो आशा ! मैं तुम्हें स्पष्ट समझना चाहता हूँ।"

आशा ने सुमेर के पैरों पर अपना सिर रख दिया। सुमेर के पैर आँसुओं से भीग रहे थे। उन्होंने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। आशा का बाँध टूट रहा था। सुमेर ने उसे अपने वक्ष-स्थल में बद्ध किए हुए ही कहा—"आज तुम जो माँगोगी, वही तुम्हें दूँगा आशा ! बोलो, क्या कहती हो ?"

आशा हिचकियाँ ले रही थी। सुमेर भी चुप रहा।

हृदय का वेग कुछ कम होने पर आशा ने धीमे स्वर में कहा—"क्या तुम सचमुच मुझसे प्रेम करते हो सुमेर?"

सुमेर ने सूखी हँसी हँसकर कहा—"क्या यह भी बतलाना पडेगा आशा? हँसी कर रही हो क्या?"

आशा ने किंचित् गंभीर होकर कहा—"तो मेरा जीवन सदैव तुम्हारा रहेगा। मैं तुम्हारे लिये रहूँगी, किंतु तुम मेरे साथ बरबाद न हो सकोगे। तुम्हें रायपुर जाना पडेगा। तुम्हारा जीवन मैं ख़तरे में न डाल सकूँगी। कुबेर दादा मेरे आश्रयदाता हैं, तुम्हें उनके साथ भेजकर मैं अवश्य अपने कर्तव्य का पालन करूँगी। तुम्हारे शरीर पर पहला अधिकार रज्जो का है। अतएव उसकी चीज़ उसे मिलनी चाहिए। तुम मुझसे मिल सकोगे, किंतु केवल प्रेम के नाते। तुम जहाँ कहोगे, मैं वहाँ रहूँगी, तुम्हारी आज्ञा मेरे लिये अंतिम वस्तु होगी, किंतु—किंतु . . . ."

कहते-कहते आशा रुक गई। सुमेर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"रुक क्यों गईं आशा? बोलो, क्या कह रही थीं?"

आशा ने फिर कहा—"किंतु रज्जो के लिये—उसके सुख के लिये—हमारा-तुम्हारा अब पवित्र नाता रहेगा। बोलो, स्वीकार है?"

"किंतु क्या यह संभव हो सकेगा?" सुमेर ने पूछा।

"इसके लिये तुम्हें निश्चिंत रहना चाहिए। मैं अपना कर्तव्य निभा सकूँगी, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।" आशा ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हारे जीवन-यापन का उपाय क्या होगा आशा?" सुमेर ने किंचित् परेशान होकर कहा।

"सुनिए, मैं संसार के सामने न सही, किंतु मन, कर्म, वचन से तुम्हारी हूँ। अतएव मेरे जीवन-यापन का भार भी तुम पर ही रहेगा। जिस दशा में तुम मुझे रक्खोगे, उसी दशा में प्रसन्न रहूँगी।

जब तक तुम मेरा और कोई प्रबंध न करोगे, मैं इसी मकान में रहूँगी। रायपुर पहुँचकर तुम्हें मेरा प्रबंध करना पड़ेगा। बोलो, क्या यह ठीक रहेगा ?" आशा ने पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—"यही ठीक रहेगा। मैं रायपुर से शीघ्र लौटकर तुम्हारा स्थायी प्रबंध करूँगा। अच्छा, अब हमें विश्राम करना चाहिए। तुम्हारे यहाँ चले आने से देवेंद्र के यहाँ काफ़ी हलचल मच गई होगी।"

"अवश्य। वह मेरे ढूँढ़ने में कुछ उठा न रक्खेगा। ख़ैर, मैं अब चली। मेरे सोने के लिये एक कोठरी चाहिए।" आशा बोली।

सुमेर आशा के मुँह की ओर देखने लगा। आशा का चेहरा लाल हो उठा था। सुमेर ने साहस करके कहा—"यह क्या कह रही हो, आशा ?"

"यही ठीक है। मैं चली।" कहकर आशा सामनेवाली कोठरी में चली गई। सुमेर देखता ही रह गया। आशा ने अंदर से साँकल चढ़ा ली। सुमेर एक श्वास लेकर पलँग पर लेट रहा।

❀ ❀ ❀

कुबेर जब सवेरे उठे, तो उनका शरीर भारी मालूम पड़ रहा था। रात की घटना ने उन पर काफ़ी प्रभाव डाला था। न-जाने क्यों उन्हें किसी भावी आशंका ने बेचैन-सा कर दिया।

नौकर आया। कुबेर ने पूछा—"क्यों रे, बहूजी का पता चला ?"

रामू ने सिर हिलाकर कहा—"ना बाबूजी, वह तो एकदम गायब हो गई।"

कुबेर चुप रहे। अब तक महेंद्रनाथ भी दैनिक कार्यों से छुट्टी पा चुके थे। उन्होंने कुबेर से कहा—"अब क्या प्रोग्राम है भाई साहब ?"

"क्या सुमेर के पास चलना होगा ? आशा तो नहीं है, किन्तु फिर भी चलकर अंतिम उत्तर ले लेना चाहिए। देखें, क्या कहता है।" कुबेर ने कहा।

"आप भी तो स्नानादि से छुट्टी पा लें। आज आप कुछ अधिक सुस्त तथा अव्यवस्थित मालूम पड रहे हैं। कल रात को कोई भयंकर स्वप्न देखा था आपने, तभी तो चिल्ला पडे थे।" महेंद्रनाथ ने कहा।

"हाँ, कल रात्रिवाला स्वप्न तो शीघ्र भूलने की चीज़ नहीं। मुझे तो निकट भविष्य में किसी अनहोनी घटना की आशंका-सी मालूम पड़ रही है।" कुबेर ने विचित्र आकृति बनाते हुए कहा।

"आप व्यर्थ घबरा रहे हैं। ईश्वर सब अच्छा ही करता है। चलिए, जल्दी तैयार हो जाइए। जो कुछ होगा, देखा जायगा।" कहते हुए महेंद्रनाथ आराम-कुरसी पर लेटकर समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

स्नानादि से निवृत्त होकर कुबेर महेंद्रनाथ के साथ चलने को तैयार हो गए। उन्होंने देवेंद्र से भी मिल लेना उचित समझा।

देवेंद्र अब तक चारपाई पर लेटा हुआ था। उसके चेहरे से यह मालूम पड रहा था कि वह वर्षों से रोग-शय्या सेवन कर रहा है।

"कहिए, कुछ पता चला ?" कुबेर ने पूछा।

"जी, कुछ नहीं। आइए, बैठिए।" कहकर देवेंद्र उठकर बैठ गया।

"मामला क्या हुआ ?" कुबेर ने सहानुभूति दिखलाते हुए पूछा।

"यह मेरे भाग्य का दोष है ? मैंने जो उसे अपने यहाँ आश्रय दिया, उसका यह फल है।" देवेंद्र ने दुखी होकर कहा।

"तो क्या वह आपकी स्त्री न थी ?" कुबेर ने साश्चर्य पूछा।

"स्त्री भला ऐसा कर सकती है ? वह निराश्रिता थी। घरवाले उसकी मृत्यु चाहते थे। जीवन की कठिनाइयों से ऊबकर वह मेरे आश्रय में आई थी। संसार में उसका कोई न था, मैंने उसे अपना सब कुछ दे दिया था। किंतु मुझे धोखा दिया गया।" कहकर देवेंद्र ने एक गहरी श्वास ली।

कुबेर का भी चित्त दुखी हुआ। उसे सदैव का दुष्टात्मा समझते हुए भी उनके हृदय में उसके प्रति थोड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई।

"क्या वह सहृदय न थी। तुम्हारे इतना त्याग करने पर भी क्या वह तुम्हारी न हो सकी ?" कुबेर ने पूछा।

"मैं आपको अधिक भूलभुलैया में नहीं डालना चाहता। मेरी आश्रिता और कोई नहीं, आपकी चिर परिचिता आशा ही थी।" देवेंद्र कह गया।

"आशा !" कुबेर मानो आकाश से गिरे। थोड़ी देर के लिये उन्हें विश्वास ही न हुआ। उनके मुँह से अनायास निकला—"तुम क्या सच कह रहे हो देवेंद्र ? नहीं, यह कभी संभव नहीं। वह तुम्हारे पास कभी नहीं आ सकती। तुम मुझे भुलावे में डाल रहे हो। आशा तो न-जाने कब की मर चुकी। गलत ! एकदम गलत !!"

कुबेर का सिर घूम रहा था। वह उठकर कमरे में टहलने लगे। उनके मुँह से फिर निकला—'क्या तुम सच कह रहे हो देवेंद्र ? आशा ! तुम्हारे पास !! एकदम गलत !!! यह तो सच हो ही नहीं सकता। गलत !"

देवेंद्र आश्चर्यान्वित होकर उनके मुँह की ओर देखने लगे। कुबेर का दिमाग ठिकाने न देखकर उसने कहा—"झूठ बोलने में मुझे क्या लाभ ? आपको विश्वास करना चाहिए।"

"हाँ, अविश्वास का कोई कारण भी तो नहीं दिखलाई पड़ता। किंतु—किंतु क्या वह ऐसी हो गई ?" कुबेर बड़बड़ाए।

"मैंने भी उस पर विश्वास किया। किंतु कल रात्रि को उसका एकाएक गायब हो जाने का तो अब तक मेरी समझ में कोई कारण न आया। मैं कभी उस पर संदेह न कर सका।" देवेंद्र ने कहा।

"आइए, भाई साहब ! देर हो रही है।" नीचे से महेंद्रनाथ ने आवाज़ दी।

कुबेर बिना कुछ और कहे ही नीचे उतर गए। न-जाने क्यों उन्हें एकाएक सुमेर का इस आशा-काण्ड से संबंध जान पड़ने लगा। उन्होंने कुछ कहना उचित न समझा, किंतु उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि सुमेर का अब रायपुर जाना नितांत असंभव है।

"चलिए, बड़ी देर हो गई।" महेंद्रनाथ ने कहा।

कुबेर उनके साथ चल दिए। मार्ग में कुबेर ने कहा—"सुमेर के पास हम लोग व्यर्थ जा रहे हैं। वह किसी प्रकार भी अब हमारे साथ न चलेगा।"

"क्यों ? क्या कोई नई बात हो गई ?" महेंद्रनाथ ने किंचित् आश्चर्य के साथ पूछा।

कुबेर ने उन्हें सब कुछ बता दिया। एक दीर्घ श्वास लेकर महेंद्रनाथ चुप हो गए।

"कहिए, अब आप क्या कहते हैं ?" कुबेर ने पूछा।

"हूँ। अब मुझे भी मामला बेढब जान पड़ता है।" महेंद्रनाथ ने उत्तर दिया।

किंतु सुमेर से मिलकर दोनो को घोर आश्चर्य हुआ, जब उसने बिना किसी प्रकार की भूमिका के ही कह दिया कि मैं रायपुर चलने के लिये तैयार हूँ।

दोनो ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा। अंत में शाम की गाड़ी से चलने का निर्णय करके दोनो देवेंद्र के घर लौट गए।

सुमेर ने दिन-भर दौड़-धूपकर आशा के लिये एक छोटा-सा घर तलाश कर लिया। मकान-मालिक एक संभ्रांत सज्जन थे। उनके घर में उनकी माता, स्त्री तथा दो लड़कियाँ थीं। सुमेर ने उनसे एक छोटी-सी कोठरी किराए पर लेकर आशा को उसी में पहुँचा दिया। उन्होंने आशा का परिचय अपनी स्त्री कहकर दिया।

❀ ❀ ❀

शाम को सुमेर, कुबेर और महेंद्रनाथ तीनो रायपुर रवाना हो गए।

सुमेर ने सोचा, चलो, अब ठीक हुआ। अब चलकर रज्जो से निपटना है।

कुबेर ने सोचा, क्या आशा सचमुच जीवित है? देवेंद्र के पास! आश्चर्य!!

महेंद्रनाथ का हृदय दुखी था। वह क्षण-क्षण में रज्जो के स्वास्थ्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे।

---

[१७]

रज्जो की अवस्था दिन-पर-दिन बिगड़ती ही चली गई। अकेली हेमप्रभा एकाएक घबरा उठी। महेंद्रनाथ को लखनऊ गए कई दिन हो गए थे, किंतु अभी तक उनके लौटने की कोई ख़बर न आई।

उस दिन रात-भर रज्जो की दशा बहुत ख़राब रही। डॉक्टर लोग रात-भर उसके सिरहाने बैठे उपचार करते रहे। हेमप्रभा के पास सिवा ईश्वर से प्रार्थना करने के और क्या था।

सबेरे रज्जो ने आँखें खोलीं। हेमप्रभा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"कैसी तबियत है बेटी ?"

रज्जो के शरीर में मानो बोलने की शक्ति ही न थी। उसने सिर हिला दिया।

"पानी पियोगी ?" हेमप्रभा ने पूछा।

रज्जो ने फिर सिर हिला दिया। डॉक्टरों ने कहा—"चिंता की बात नहीं। लक्षण बुरे नहीं हैं। अब ज्वर बहुत साधारण है।"

सबको आशा हुई। रज्जो को भी कुछ आराम मालूम पड़ रहा था। उसने एक बार कहा—"मा !"

"मैं यहीं हूँ बेटी ! बोलो, क्या कहती हो ?" हेमप्रभा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"क्या चाचाजी लौट आए ?" उसने धीमे स्वर से पूछा।

"अभी आनेवाले हैं। लगभग दो घंटे में आ जायँगे।" हेमप्रभा ने उसे झूठी सांत्वना देते हुए कहा।

किंतु ठीक दो घंटे में महेंद्रनाथ सचमुच ही आ गए। हेमप्रभा ने सोचा, इस वक़्त मैं जो बात कहती, वह अवश्य पूरी होती। हाय! मैंने रज्जो का दीर्घ जीवन ही क्यों माँग लिया?

हेमप्रभा को मालूम न था कि भगवान् जो बात पूरी करना चाहते हैं, उसे ही मुँह से निकलवाते हैं।

थोड़ी ही देर में महेंद्रनाथ, कुबेर तथा सुमेर रज्जो के सामने आकर खड़े हो गए।

"कैसा जी है बेटी?" महेंद्रनाथ ने समीप आकर कहा।

"ठीक है।" रज्जो ने धीरे से कहा।

"इधर देखो, कौन आया है?" महेंद्रनाथ ने कहा।

रज्जो ने सुमेर की ओर देखा, और आँखें दूसरी ओर कर लीं।

हेमप्रभा ने देखा, उसकी आँखों में दो अश्रु-कण आकर बिना ढुलके ही रह गए।

थोड़ी देर में वहाँ केवल सुमेर ही रह गए। रज्जो के निकट बैठकर उन्होंने उसका दुर्बल हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—"कैसा जी है तुम्हारा रज्जो?"

अश्रु-कण इस बार ढुलक पड़े। उसने सुमेर का हाथ धीरे से सरकाकर अपने वक्षःस्थल पर रख लिया। वह कुछ बोली नहीं।

'क्या नाराज़ हो?' सुमेर ने बड़ी कोमल वाणी से कहा।

रज्जो के शुष्क अधरों में हलकी-सी मुसकान दौड़ गई। सुमेर ने उसके सिर के बालों को सुलझाते हुए कहा—"बोलो, नाराज़ तो नहीं हो?"

मुख पर किंचित हास्य लाते हुए उसने धीरे से कहा—"हूँ तो।"

"तो अब क्षमा कर दो। क्या क्षमा न करोगी?" सुमेर ने बड़े प्रेम से कहा।

रज्जो ने उसी तरह मुसकान के साथ धीरे से कहा—"नरेंद्रनाथ की बेटी सबको क्षमा कर सकती है, किंतु अपने पति को नहीं।"

"क्यों ?" सुमेर के मुँह से निकला।

"क्योंकि उसे अपनी भूल मालूम हो गई है। पति पिता से भी बड़ा है, यह मुझे किसी ने भी कभी नहीं सिखलाया।" रज्जो ने किंचित् गंभीर होकर कहा।

"अधिक बातें न करो। अच्छा, अब आराम करो। हम दोनों ने एक दूसरे को क्षमा कर दिया।" सुमेर ने उसका हृदय हलका करने की नीयत से कहा।

रज्जो थक गई थी, किंतु वह साहस कर धीरे से बोली—"किंतु मेरी मा—मेरी प्रेममयी माँ—मेरे पिता से भी बड़ी है। यह मुझे बाद में मालूम हुआ। उन्हीं ने मुझसे बतलाया कि पति से बढ़कर संसार में .. "

सुमेर ने उसके मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—"इस समय सो जाओ। तुम थक गई हो, फिर बात करेंगे।"

किंतु रज्जो में मानो एक दैवी स्फूर्ति-सी आ गई थी। उसने सुमेर का हाथ पकड़कर कहा—"मैं बैठना चाहती हूँ। क्या मुझे उठने में सहारा दोगे ? लेटे-लेटे पीठ में दर्द मालूम पड़ रहा है।"

सुमेर ने उसे सहारा देकर उठाया। रज्जो तकिए के सहारे बैठ गई। उसने सुमेर से भी चारपाई पर अच्छी तरह बैठने को कहा।

सुमेर पैर उठाकर भली भाँति चारपाई पर बैठ गए। एकाएक कटे वृक्ष की तरह रज्जो ने उनके पैर पकड़कर अपना सिर रख दिया। सुमेर घबरा उठे—"यह क्या करती हो। लेटो, नहीं तो तुम्हारा ज्वर बढ़ जायगा।"

"अब ज्वर से मैं नहीं डरती। बिना तुमसे क्षमा प्राप्त किए मैं

तुम्हारे चरणों को न छोड़ूँगी। बोलो, क्या क्षमा करोगे?" रज्जो ने पैरों पर सिर रगड़ते हुए कहा।

सुमेर ने उसे बल-पूर्वक उठाकर पलँग पर लिटा दिया। रज्जो बेहोश थी। सुमेर ने उसके शरीर से अनुमान लगाया कि ज्वर बहुत बढ़ गया है। वह उसे लिटाकर चारपाई से उतर आए।

फ़ौरन् डॉक्टर आए। परीक्षा के बाद डॉक्टर ने कहा—"उत्तेजना के कारण ज्वर बढ़ गया है। यह बहुत बुरा है। अब ऐसा न होना चाहिए।

रज्जो फिर न उठ सकी। उसे अब मरने में मानो आनंद-सा आ रहा था। ठीक १० घंटे बाद पति की गोद में सिर रक्खे हुए महाशय नरेंद्रनाथ की स्वाभिमानिनी पुत्री पिता के पास चल दी!

❀ ❀ ❀

सुमेर ने उसे सद्गति दी। उनका हृदय मानो कोई निकाले ले रहा हो। श्मशान से लौटने पर उन्हें अपने चारो ओर अंधकार-सा मालूम पड़ने लगा। वह सिर पर हाथ रख बैठ गए।

एकाएक आशा ने उनके स्मृति-मंदिर को हिलाया। वह पलँग पर विश्राम करने चले गए।

महेंद्रनाथ ने किसी से बातचीत न की। वह अधिकांश में अपने कमरे के बाहर ही न निकलते थे। कभी-कभी सतत हेमप्रभा को सांत्वना देने की चेष्टा करते-करते वह स्वयं फूट-फूटकर रो पड़ते।

रज्जो की मृत्यु का हाल पाकर किरण भी वहीं आ गई थी। वह हेमप्रभा के साथ रहकर उसका दिल बहलाया करती थी।

सुमेर दुखी भी थे, और लज्जित भी। उन्हें ऐसा मालूम पड़ता था, मानो रज्जो की मृत्यु का कारण वही हों। उन्हें राजप्रासाद में किसी से भी मिलते-जुलते लज्जा-सी मालूम पड़ती थी।

एक दिन महेंद्रनाथ ने कुबेर तथा सुमेर को अपने कमरे में बुलवाकर कहा—"मैं आप लोगों से कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूँ।"

कुबेर तथा सुमेर चुप रहे। महेंद्रनाथ ने कहना शुरू किया—"यह आपको मालूम है कि अब हमारे वंश की समाप्ति हो रही है। इसके पहले कि मैं भी अपनी अंतिम घड़ियाँ गिनूँ, मैं इस विस्तृत तथा विशाल संपत्ति का अपने जीवन ही में दान-पत्र लिख देना चाहता हूँ।"

कुबेर ने दुखी हृदय से कहा—"ईश्वर ने आप पर विपत्ति का पहाड़ लाद दिया है। यद्यपि मेरा ऐसा कहने का कोई भी अधिकार नहीं, फिर भी मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा।"

"कहिए।" महेंद्रनाथ ने बड़े गंभीर भाव से कहा।

"बात कुछ बेढंगी-सी है, किंतु बिना कहे न रह सकूँगा। अभी आपकी अवस्था इतनी अधिक नहीं। मैं आपको पुनर्विवाह करने की सलाह देना चाहता हूँ।" कुबेर ने कहा।

महेंद्रनाथ सूखी हँसी हँसकर बोले—"आप-जैसा सज्जन मैंने अपने जीवन में नहीं देखा। विवाह की कल्पना भी करना मैं अपने लिये पाप समझता हूँ। मैं अपनी सारी संपत्ति आपके चरणों में रख देना चाहता हूँ। जीवन-भर की भूलों का केवल यही प्रायश्चित्त है।"

कुबेर सन्नाटे में आ गए। महेंद्रनाथ ने सुमेर की ओर देखते हुए कहा—"आप बुरा न मानें सुमेर बाबू। मैं आपको इस भार के सँभालने में बिलकुल अयोग्य समझता हूँ। किंतु मैं आपके साथ अन्याय करना नहीं चाहता, अतएव आपके जीवन-निर्वाहार्थ मैंने १००) मासिक की सिफारिश अपने दान-पत्र में कुबेरचंदजी से कर दी है। किंतु देने और न देने का अधिकार भी उन्हीं को है।"

महेंद्रनाथ ने उठकर आल्मारी से अपना दान-पत्र निकाला। उसके अनुसार संपूर्ण संपत्ति कुबेर के नाम लिख दी गई थी। उसमें महेंद्रनाथ ने लिखा था—"यदि कुबेरचंद चाहें, तो मैं सुमेरचंद को १००) मासिक देने की उनसे अपील करता हूँ।"

दान-पत्र पर महेंद्रनाथ के हस्ताक्षर थे। उन्होंने एक दूसरा कागज़ और निकाला। उसके द्वारा रज्जो ने अपनी सारी संपत्ति का अधिकारी महेंद्रनाथ को बना दिया था।"

सुमेर के मुँह से एक शब्द भी न निकला। कुबेर ने कहा—"आपने एक गुरुतर भार मेरे ऊपर रख दिया है। मैंने अपने जीवन में धन से अधिक और किसी वस्तु से घृणा नहीं की। आपने मुझे बड़ा भारी भार सौंप दिया है।"

महेंद्रनाथ मुस्किराए। बोले—"आप इस भार से मुक्त नहीं हो सकते। हम लोगों ने सदा धन के मद में उसका दुर्व्यवहार ही किया है, और आज हमारा सर्वनाश भी इसी के मद से हुआ है। आशा है, अब उचित पुरुष के हाथ में पहुँचकर उसका सदुप-योग होगा।"

कुबेर कुछ न बोले। वह आवश्यकता से अधिक गंभीर थे। सुमेर उठकर बाहर चले गए। महेंद्रनाथ ने दान-पत्र उठाकर कुबेर के पैरों के पास रख दिया।

❀ ❀ ❀

इस प्रकार साधारण स्थिति में रहनेवाला कोरा नाम का कुबेर भाग्य-चक्र से वास्तव में कुबेर हो गया।

[१८]

जीवन मे परिस्थितियाँ ही मनुष्य को विवश कर देती हैं। परिस्थिति के हाथ का पुतला बनकर मनुष्य जीवन - सग्राम के रगमच पर नाना प्रकार के अभिनय करने लगता है । जीवन का मनोवैज्ञानिक पहलू ही मनुष्य के लिये परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देता है । कहने का अभिप्राय यह कि पहले तो मनुष्य मनोविज्ञान की परिधि मे पडकर अपने लिये अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न कर लेता है, और बाद में वही परिस्थिति मनुष्य को एक निश्चित मार्ग पर रुक जाने के लिये विवश कर देती है। अतएव मनोविज्ञान और परिस्थिति में बड़ा गूढ़ पारस्परिक सबंध रहता है । मनोविज्ञान का आश्रय लेने के बाद तर्क और मनोवृत्ति में युद्ध होने लगता है, और अधिकाशत इस स्वाभाविक संघर्ष मे मनोवृत्ति की ही विजय होती है । इस स्थल पर यह भी स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि अध्यवसायी तथा विचारशील पुरुष प्राय. तर्क की शरण लेते हैं, और भावुक एव साधारण बुद्धि· वाले मनोवृत्ति की ओर ढुलक जाते हैं । इसी से प्राय· देखा गया है कि तार्किक लोगों की परिस्थिति प्राय अनुकूल और सुलझी हुई रहती है तथा भावुक लोगों की अधिकाशत प्रतिकूल हुआ करती है ।

कुनेर तार्किक श्रेणी का व्यक्ति था, और सुमेर भावुक श्रेणी का । पाठक दोनो की परिस्थितियों मे जो विषमता अनुभव कर रहे हैं, उसका मुख्य कारण हमारा मनोविज्ञान ही है । दोनों

ही मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर चलते हैं। एक तर्क पर चलता है, दूसरा मनोवृत्ति की प्रधानता में आत्मसमर्पण करता रहता है। यही कारण है, कुबेर की परिस्थितियाँ प्रतिकूल होते हुए भी अनुकूल हो गईं, तथा सारे साधन उपलब्ध होते हुए भी सुमेर दर-दर के भिखारी एवं परमुखापेक्षी हो गए।

कुबेर भी आशा से प्रेम करते हैं और सुमेर भी। कुबेर मनोवृत्तियों पर विजय पाते हैं, और सुमेर को मनोवृत्तियाँ पतन की ओर ले जाती हैं।

यदि सुमेर में तर्क और विचारशीलता प्रचुर मात्रा में होती, तो वह सोच लेते कि कुबेर की संपत्ति मेरी ही संपत्ति है। कुबेर-जैसे व्यक्ति को अपनाकर अपना बना लेना कठिन बात न थी। किंतु इतना सब कुछ होने पर भी उन्होंने कुबेर को गैर समझा, और उनकी यही विचार-शक्ति उनके प्रशस्त मार्ग का रोड़ा बनकर खड़ी हो गई। उन्होंने कुबेर की दया पर रहने को अपना घोर अपमान समझा। उन्होंने कुबेर से स्पष्ट कह दिया कि मैं आपकी कृपा का भूखा नहीं। उस समय सुमेर इस बात को भूल गए कि मैं अब तक किसकी कृपा पर निर्भर रहा हूँ। कुबेर को भी आश्चर्य था, क्योंकि सुमेर-सा सीधा सादा और आज्ञाकारी भाई इस प्रकार उनका खुल्लमखुल्ला विरोधी हो जाय। उन्होंने इसे धन का ही एक शाप समझा। कुबेर ने सोचा, धनी बनने की भूमिका ही में अपनों को खो देना पड़ता है।

महेंद्रनाथ थोड़े ही दिनों में हेमप्रभा तथा दो-चार नौकरों को साथ लेकर काशी चले गए। उन्होंने वहीं रहने का निश्चय कर लिया, और संपूर्ण संपत्ति के साथ राजप्रासाद की कुंजी भी कुबेर के हाथ में सौंप दी।

सुमेर ने आशा को एक पत्र भेजकर यहाँ की सारी परिस्थिति

लिख दी। उन्होने लिखा—"दो-चार दिन में ही मैं तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। हम दोनो मिलकर प्रेम-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करेंगे। भगवान् कहीं-न-कहीं से भोजन अवश्य देगा।"

सुमेर का पत्र पाकर आशा को बड़ा दुःख हुआ। वह कुबेर से वैर बाँधने के पक्ष में न थी। उसने सुमेर को लिखा—"कुबेर दादा भले आदमी हैं, उनके साथ रहने और उनकी आज्ञा मानने में तुम्हारा कोई अपमान नहीं। मेरी तो यही सलाह है। आगे तुम्हारी मर्ज़ी।"

पत्र पाकर सुमेर को संतोष न हुआ। उन्होने समझा, आशा इन बातों को क्या समझ सकती है। एक दिन मौक़ा पाकर उन्होंने कुबेर से कहा—"मैं जाना चाहता हूँ दादा।"

कुबेर चकित होकर उनका मुँह देखने लगे। उन्होने कहा—"कहाँ जाना चाहते हो?"

कुछ देर चुप रहकर सुमेर बोले—"जिधर जा सकूँगा, चला जाऊँगा।"

"आखिर क्यों जाना चाहते हो, मैं क्या सुन सकता हूँ?" कुबेर ने ज़रा खीझकर कहा।

सुमेर नीचा सिर किए खड़े रहे। कुबेर ने फिर कहा—"तुम्हें भले आदमियों की तरह घर में रहना चाहिए। इस प्रकार मारे-मारे फिरने से क्या लाभ? तुमने कभी अपने भविष्य पर भी विचार किया?"

सुमेर का कंठ खुला। उन्होने सिर ऊँचा करके कहा—"आप लोगों की दया से मैं अपना अच्छा बुरा सब समझता हूँ। मैं सदा का-सा मूर्ख अब नहीं रहा। आप व्यर्थ मुझे समझाना चाहते हैं। आप जो कुछ भी कह रहे हैं, उसमें मेरे लिये किसी तरह का भी तत्व नहीं। आप मुझे जाने की आज्ञा दें।"

'तो तुम्हें रोक भी तो नहीं सकता। मेरा जो कर्तव्य है, मैं उसका पालन करना चाहता हूँ। मैंने सदा से तुम्हें अपने पुत्र के समान समझा है। मुझे आश्चर्य है, इतने थोड़े समय में तुम कितने अधिक बदल गए हो। तुम्हारे चले जाने से क्या मैं सुखी रह सकूँगा?' कहते हुए कुबेर के नेत्र सजल हो उठे।

"जिसके पास धन है, वह कभी दुखी नहीं रह सकता। आप धनवान् हैं, सुखी हैं। मैं निर्धन हूँ, मेरा इसी तरह रहना ही अधिक उपयुक्त है।" सुमेर ने व्यंग्यात्मक ढंग से कहा।

"तो क्या तुम हमारे धन से सुखी नहीं हो सकते सुमेर? चार दिन पहले यह धन दूसरे का था, आज मेरा है, और कल तुम्हारा भी तो हो सकता है। वैभव पाने से मनुष्य मनुष्य नहीं रहता।" कुबेर ने कहा।

"यही तो देख रहा हूँ कि धन पाने से मनुष्य के स्वभाव में कितना परिवर्तन हो जाता है।" सुमेर ने चुटकी ली।

कुबेर समझ गए कि व्यंग्य मुझी पर है। उन्होंने शांत भाव से कहा—'तुम धन चाहते हो सुमेर? बोलो, तुम्हें कितना धन चाहिए?"

"पूर्णाधिकार होने पर भी जो वैभव मुझे नहीं मिला, उस पर मैं लानत भेजता हूँ।" सुमेर ने सगर्व कहा।

कुबेर को इस प्रकार की बातें असह्य-सी होती जा रही थीं, किंतु उन्होंने अटूट सहनशीलता दिखलाई। वह बोले—"तुमने स्वयं अपने को इस योग्य नहीं रक्खा। तुम्हारे निष्कलंक चरित्र पर जो धब्बा लगा है, वह अमिट है। तुम राजा थे, किंतु तुमने उसका महत्त्व नहीं समझा। फिर भी तुम मुझे इतना पराया समझोगे, यह मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था।"

"किंतु आपको भी मुझ पर विश्वास करना चाहिए था। अपना

विश्वास खोकर मैं एक घड़ी भी रहना नहीं चाहता। आप उसी ऐश्वर्य को मेरे हाथ में सौंप सकते थे।" सुमेर ने स्पष्ट रूप से कह डाला।

कुबेर ने क्षण-भर सोचा, फिर कहा—"तुम भूल रहे हो सुमेर। वह थाती मेरी भी नहीं।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि वह किसकी है?"

"अवश्य। महेंद्रनाथ ने उसे सुरक्षित रखने के लिये मुझे सौंपा है। क्या तुम इतना भी न समझ सके?"

"जानता हूँ।"

"क्या?"

"यही कि शायद मैं उस धन को बरबाद कर दूँगा। यही न?"

"तुम ठीक समझे। ऐसी दशा में मेरा क्या कर्तव्य है, समझते हो?"

"खूब समझता हूँ। और, तभी तो आपको अकेला, स्वच्छंद छोड़ देना चाहता हूँ। मैं तो इस धन के लिये राहु के सदृश हूँ। आज्ञा दीजिए, चलता हूँ।" कहते हुए सुमेर वहाँ से चल दिए।

कुबेर बड़ी देर तक मौन बैठे रहे। थोड़ी देर में किरण ने आकर कहा—"क्या सुमेर कहीं जा रहा है?"

"हाँ।"

"कहाँ?"

"जहाँ इच्छा होगी।"

"क्यों?"

"क्योंकि उसकी संपत्ति उसे न मिलकर उसके बड़े भाई को दे दी गई।"

"तुमने उसे समझाया नहीं?"

"मैं तो समझ चुका। अब तुम समझाकर रोक सको, तो रोक लो।"

किरण पति के मुँह की ओर देखती रह गई। कुबेर ने कहा—"यह लड़का भी हाथ से गया। मैं जितना ही उसकी समस्या को सुलझाना चाहता हूँ, उतना ही वह उसे उलझा रहा है।"

"तो जहाँ जी हो, चला जाय। ज़िंदगी-भर खिलाया-पिलाया, पाल पोसकर बड़ा किया, और सदा अपने बच्चे की तरह रक्खा। अब पर लग गए हैं, तो क्यों न उड़ेगा? हत्तेरे ज़माने की।" किरण को किंचित् क्रोध आ गया।

कुबेर शान्त रहे। किरण ने कहना शुरू किया—"वाह रे ज़माने! बदचलनी करेगा, दूसरों की बहू-बेटियों को ताकेगा, और इस तरह अकड़ेगा। वाह भाई वाह!"

"और इस पर तुर्रा यह कि आपने यह धन वैभव ले कैसे लिया?"

"ज़रूर ले लेंगे। मैं तो उसे हत्यारा समझती हूँ। पराई बेटी को किस तरह कलपा-कलपाकर मार डाला, यह आँखों-देखी बात है। जिसकी बेटी मार डालोगे, वह तुम्हें ज़रूर अपनी थाती सौंप देगा। हत्यारा कहीं का!"

कुबेर उठकर बाहर आ गए। उनका दिल भी सुमेर की ओर से फिर रहा था। वह बाहर जाकर उपवन में टहलने लगे।

किरण बड़ी देर तक क्रोध में भरी बैठी रही। उसी समय सुमेर ने आकर कहा—"गाली क्यों दे रही हो भाभी! मैंने कौन-सा तुम्हारे मुँह का कौर छीन लिया?"

किरण उबल पड़ी। बोली—"नहीं, कौर तो मैंने छीना है, जो तुम्हें आज इस तरह बोलने लायक़ बनाया। तुम्हारा क्या कसूर, यह तो ज़माने का ढंग है। जैसा किया, वैसा पाया।"

"ज़रूर पाया। राज-पाट तो मिल गया, और क्या चाहती हो?" सुमेर ने जवाब दिया।

"तो तुम्हारी छाती क्यों फटी जाती है? जो शख्स अपने भाई-भौजाई को नहीं देख सकता, उसका क्या ठीक। तुम्हारा बस चले, तो निकलवा दो भाई।" किरण ने उच्च स्वर से आसमान ऊपर उठा लिया।

सुमेर ने समझा, किरण भयानक रूप से उत्तेजित है।

किरण ने फिर कहा—"अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो कोई कसर उठा मत रखना। मैं भी देखूँ…"

"चुप रहो भाभी! मैं बहुत बरदाश्त कर रहा हूँ, अब यदि ज़बान खोली, तो अच्छा न होगा। रही निकलवाने की बात, सो उसका भी फल तुम्हें जल्द देखने को मिल जायगा।" सुमेर ने चिल्ला कर कहा।

"अच्छा, जाओ, फाँसी पर लटकवा देना। जाओ बाबा, इन लोगों का पीछा छोड़ो।" कहती हुई किरण झनझनाकर कमरे के बाहर निकल गई।

सुमेर कुछ देर तक वहाँ खड़े रहे, फिर एक विचित्र-सी आकृति बनाते हुए बाहर हो गए।

कुबेर ने सब कुछ सुना अपने कानों से, किंतु शांत रहे। उन्होंने समझ लिया, सुमेर अवश्य कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़ा करेगा। वह निकट-भविष्य की आशंका से एक बार भयभीत हो उठे।

सुमेर उसी दिन शाम को वहाँ से चल दिए।

❀　　　　❀　　　　❀

लखनऊ पहुँचकर उन्होंने आशा से कहा—"भाभी ने मुझे अपमानित किया है। मैं इसका बदला लूँगा।"

आशा चुप रही। सुमेर बहुत थके हुए थे। पास में पैसा न होने से वह स्टेशन से घर तक पैदल ही आए थे।

सुमेर का म्लान मुख देखकर आशा का हृदय बहुत दुखी हुआ। उसने कहा—"ये बातें फिर होंगी, पहले नहा-धोकर भोजन कर लो।"

सुमेर बहुत श्रांत थे। स्नान तथा भोजन से निवृत्त होकर वह लेट गए। आशा धीरे-धीरे उनके पैर दाबने लगी।

कई दिन बाद पूर्ण विश्राम पाकर सुमेर का जी हलका हुआ। उनके सामने अब नई समस्या थी, और वह थी भोजन की। रायपुर चले जाने से उनकी नौकरी समाप्त हो गई थी, उस जगह दूसरा व्यक्ति काम कर रहा था। सुमेर के पास अब कौड़ी भी न थी।

उस दिन सवेरे से कुछ भी भोजन न बना था। थोड़े-से भुने हुए चने सुमेर को खिलाकर आशा ने उपवास कर डाला था।

शाम को सुमेर देवेंद्र के घर पहुँचे। देवेंद्र सुस्त-सा आराम-कुरसी पर लेटा हुआ विचार-सागर में गोते खा रहा था।

"कब आए भाई?" उसने सुमेर को देखकर कहा।

"कई रोज़ हो गए आए। क्या करूँ, नौकरी भी छूट गई। कुछ समझ में नहीं आता, क्या करूँ।" सुमेर ने खिन्न भाव से कहा।

"रायपुर से कैसे लौटे? क्या बीबी से नहीं पटी?" देवेंद्र ने किंचित् मुस्किराकर कहा।

"उसका तो स्वर्गवास हो गया। अब मेरी वहाँ पूछ ही क्या?" सुमेर ने सजल नेत्रों से कहा।

"हैं, क्या रज्जो नहीं रही! बड़ा ग़ज़ब हो गया! कुबेर कहाँ गए। क्या कानपुर में हैं?" उसने पूछा।

सुमेर चुप रहे। देवेंद्र समझ गया, सुमेर कष्ट में हैं। उसने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"घबराने की कोई बात नहीं। बतलाओ, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर ने कहा—"दादा ने मुझे पूरा धोखा

दिया। सारी संपत्ति हड़पकर अपने पास धर ली। मैं तो कौड़ी-कौड़ी का भिखारी होकर आया हूँ।"

देवेंद्र बोला—"मगर उस पर तो क़ानूनन् तुम्हारा हक़ है। कुबेर कैसे ले सकते हैं।"

"बहुत दिनों से यह सारा षड्यन्त्र चल रहा था। अंत को दादा से प्रभावित होकर महेंद्रनाथ ने सारी संपत्ति उनके नाम कर दी।" कहकर सुमेर रो दिए।

देवेंद्र द्रवीभूत हो गया। उसे कुबेर की ईमानदारी पर पहले ही से शक था। उसने सुमेर को धैर्य बँधाते हुए कहा—"घबराने की कोई बात नहीं। तुम्हें जिस प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो, मुझसे लो। मैं तब तक वकीलों से सलाह लेकर कोई उपाय निकालूँगा।"

सुमेर को डूबते में तिनके का सहारा मिला, किंतु इस समय देवेंद्र से कुछ माँगते हुए उन्हें लज्जा आ रही थी। वह दिन-भर के भूखे थे, उन्हें मालूम था कि आशा के मुँह में आज एक अन्न का दाना भी नहीं गया है, फिर भी वह चुप बैठे रहे।

किंतु वह माँगने से बच गए। देवेंद्र ने १००) का एक नोट देते हुए उनसे कहा—"यह लो अपने ख़र्च के लिये। जब तुम्हारे पास हो, दे देना।"

सुमेर ने संकोच के साथ हाथ बढ़ाकर रुपए ले लिए। थोड़ी देर बाद वह घर लौट आए।

सुमेर ने आशा से सब कुछ कहा, किंतु देवेंद्र की सहायता आशा को पसंद न थी।

बड़ी दौड़-धूप करने पर भी सुमेर को नौकरी न मिली। १००) कितने दिन चलते, मकान का भाड़ा भी तीन महीने का चढ़ गया। इधर नौकरी की दौड़-धूप में कुछ रुपए ख़र्च हो गए। सुमेर की

चिंताएँ बढ़ती जाती थीं। अब वह बात-बात पर खीझ उठते हैं। आशा के प्रति भी अब उनका व्यवहार नरम न था। आशा सब कुछ देखती, किंतु सहन करती। वह जानती थी, सुमेर की सारी विपत्तियों की जड़ मैं हूँ, फिर भी वह शांत रहती। वह दिन पर-दिन सूखती चली जाती थी। न तो भर-पेट भोजन मिलता और न तन भर कपड़ा, किंतु वह सुमेर के साथ इसी में सुखी रहती। सुमेर का चिड़चिड़ा मिज़ाज कभी-कभी उसके घोर अपमान का कारण हो जाता, फिर भी आशा हँसते हुए सब कुछ झेल जाती।

उस दिन घर में अन्न का दाना भी न था। सुमेर ने फिर देवेंद्र का ध्यान किया, किंतु बार-बार उसके पास जाते उन्हें लज्जा मालूम होती थी। वह स्तब्ध होकर कमरे में टहलने लगे।

आशा आई। वह सुमेर की गति-विधि देखकर समझ गई कि यह इस समय बड़ी परेशानी में हैं।

"थोड़े-से चावल तैयार किए हैं, चलकर खा लो।" उसने धीरे से कहा।

"मुझे भूख नहीं। तुम जाकर अपना काम करो।" सुमेर ने अनमने ढंग से कहा।

"सबेरे से कुछ खाया नहीं, फिर भी भूख नहीं। कैसी बातें करते हो? चलो, थोड़ा-सा खा लो।" आशा ने आजिज़ी से कहा।

"तुम मुझे क्यों तंग कर रही हो? एक बार कह दिया, मुझे भूख नहीं, फिर क्यों पीछे पड़ी हो? ज़रा भी चैन नहीं।" सुमेर ने रूखे होकर उत्तर दिया।

"तो कब तक भूखे रहोगे? यह तो रोज़ का चर्चा है। न खाने का कोई कारण भी तो हो।" आशा ने ज़रा रुआसी-सी होकर कहा।

"जो काम नहीं करता, उसे भोजन करने का क्या अधिकार?

मैने कह दिया, जाओ, अपना काम करो। मुझे ज़रा देर के लिये अकेले छोड़ दो।" सुमेर ने खीझकर कहा।

आशा चुप होकर धीरे से चल दी। जाते-जाते उसने आँचल से दो बूँद आँसू पोछ लिए। सुमेर ने उस ओर देखा भी नहीं।

सुमेर बडी देर तक उसी प्रकार टहलते रहे, फिर जूते पहनकर बाहर चलने लगे। आशा ने उन्हे देखा, और पूछा —"कितनी देर में लौटोगे।"

सुमेर ने जवाब दिया—"कुछ ठीक नहीं। मेरा रास्ता मत देखना।"

वह चल दिए। उन्हे स्वयं न मालूम था कि वह किधर जा रहे है। रास्ते में उन्हे एक व्यक्ति ने रोककर कहा—"कहाँ चले भाई?"

सुमेर ने चौंककर उसकी ओर देखा।

"ओहो, तुम हो भाई जगदीश! बहुत दिन बाद मिले। कहो, ठीक तो हो।" सुमेर हँसकर बोले।

"अरे, मेरे ठीक होने की क्या। हमेशा ठीक रहता हूँ। अपनी कहो, कहाँ मुर्दा-सी सूरत बनाए हुए जा रहे हो? कुबेर भाई कहाँ है?" जगदीश ने सदा की-सी मनोरजक टोन में कहा।

"क्या करूँ भाई, भाग्य का फेर है। ठोकरें खा रहा हूँ। दुःख मे कौन किसका होता है?" सुमेर ने एक ठढी साँस लेकर कहा।

"बात क्या है, कुछ बताओगे, या यो ही मजनूँ की तरह सिसकारियाँ भरते रहोगे। अजब बौखल आदमी हो।" जगदीश बोला।

"सब कुछ क्या यहीं सड़क पर कहना पडेगा। अरे, कहीं बैठकर बात करो।" सुमेर ने कहा।

'बैठूँ कहाँ? न तुम्हारे घर-बार, न मेरे। दोनो ही ठलुए सूखे की तरह हैं। फिर बताओ, कहाँ चलें? आओ, अमीनाबाद-पार्क मे चलकर बैठें।" जगदीश ने उनका हाथ पकड़ते हुए कहा।

दोनो अमीनाबाद-पार्क पहुँचे। यह पार्क भी लखनऊ की शोभा बढ़ाता है। शाम को खूब भीड़ होती है, और सभी प्रकार के स्त्री-पुरुष आपको टहलते, घूमते, बैठे तथा आमोद-प्रमोद करते मिलेंगे।

सुमेर और जगदीश पार्क के कोने में बैठ गए। सुमेर दिन-भर के भूखे-प्यासे थे, उन्होंने जगदीश से कहा—"भाई, कुछ भूख मालूम पड़ रही है। आओ, कुछ खा-पी लें, तब बातें करें।"

"अजब चोगा हो तुम सुमेर! रास्ते-भर क्यों नहीं कहा, जो थोड़ी-सी चाट उड़ा लेते। अच्छा, आओ। सामनेवाली खोंचे की दूकान पर चलकर थोड़ी पेटपूजा कर डाली जाय।"

दोनो दूकान पर पहुँचे। सुमेर बहुत भूखे थे, उन्होंने जी-भरकर खाया। उनके हृदय में एक बार यह विचार आया कि आशा भी दिन-भर की भूखी बैठी होगी। उनके हृदय में थोड़ी देर के लिये मीठा-मीठा दर्द-सा होने लगा।

खा चुकने पर जगदीश पैसे देने लगा, तो सुमेर ने अपनी जेब में हाथ डालने की चेष्टा करते हुए कहा—"यह क्या कर रहे हो? मैं पैसे दे रहा हूँ। कितने पैसे हुए भाई?"

"ढोंग मत दिखाओ। जानता हूँ, बड़े पैसेवाले हो। ससुराल से रकम मिल गई है न?" कहते हुए जगदीश ने पैसे चुका दिए।

सुमेर ने जेब में हाथ खींच लिया। उनका केवल बहाना-मात्र था। कितने पैसे थे उनकी जेब में, यह पाठक भली भाँति जानते हैं।

दोनो फिर पार्क में लौट आए। जगदीश तो हरी घास में लोट लगाने लगा, किंतु सुमेर बैठे रहे।

"रायपुर कब से नहीं गए?" जगदीश ने पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर सुमेर बोले—"यह भी एक दुखांत कहानी है। मैं बड़े कष्ट में हूँ जगदीश भाई।"

सुमेर रो पड़े।

"बड़े पागल हो। क्या भाभी ने तुम्हें मारकर निकाल दिया। बताते क्यों नहीं महाशय ?" जगदीश ने कहा।

सुमेर अब रुक न सके। उन्होंने हृदय खोलकर सारी सच्ची कथा सुना दी। जगदीश सब कुछ सुनकर अवाक् रह गया। उसका मन कुबेर पर अविश्वास करने को न होता था, फिर भी उसने सोचा, सम्भव है, संपत्ति के लोभ ने कुबेर की सुमति हर ली हो।

"तो अब आशाजी हैं कहाँ ? हम लोग तो उसे मरी हुई समझ रहे हैं। ख़ूब रही।" जगदीश बोला।

"यहीं हैं। इस वक्त मेरी बड़ी बुरी दशा है जगदीश भाई। तुम्हें अपना समझकर सब कुछ कह देने का साहस हुआ है।" सुमेर बोले।

जगदीश कुछ और सोच रहा था। उसे कुछ दिन पूर्व की सुस्मृतियाँ याद आ रही थीं। आशा से वह अटूट प्रेम करता था। उस पर अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिये प्रस्तुत, किंतु आशा ने उसे बड़ी बुरी तरह अपमानित किया था। कहाँ गया आशा का तेज और थोथे सतीपन का अपमान ! छि !

जगदीश की सारी देह सिहर उठी ! आशा इतना गिरी ! देवेंद्र, सुमेर, छि ! वेश्या से भी गई-बीती ! क्या मैं सुमेर और देवेंद्र से भी गया-बीता था। ठीक है—

"स्त्रीचरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।"

जगदीश के चेहरे का रंग बदल गया था, जो संध्या के क्षीण अंधकार में सुमेर न देख सके। यदि वह देख पाते, तो अवश्य अनुमान के पथ पर दौड़ लगाने लगते।

"चुप क्यों हो गए भाई! क्या तुम्हें मेरी कहानी पर विश्वास नहीं हुआ?" सुमेर ने पूछा।

जगदीश बोला—"विश्वास क्यों नहीं हुआ, किंतु क्या मेरी कुछ शकाएँ दूर करोगे?"

"अवश्य।"

"कुछ छिपाओगे तो नहीं?"

"तुमसे क्या छिपाना, जब सब कुछ कह डाला।"

"आशा तुमसे वास्तव में प्रेम करती है, इसका कोई दृढ़ प्रमाण दे सकते हो?"

सुमेर चुप रहे।

"तुम्हीं ने कहा है, मेरे रायपुर चले जाने पर आशा देवेंद्र के पास चली गई। क्या तुम्हें उसके प्रेम पर संदेह नहीं हुआ?"

"हुआ, किंतु जिन परिस्थितियों में पड़कर आशा ने ऐसा किया, उसे सुनकर वह संदेह जाता रहा। आपको भी तो बता चुका हूँ।"

जगदीश चुप रहा। सुमेर ने फिर कहा—"आशा पर मुझे पूर्ण विश्वास है। देवेंद्र के ऐश्वर्य को छोड़कर वह मेरे पास चली आई, यही इस बात का काफी प्रमाण है।"

"हूँ।" कहकर जगदीश फिर चुप हो गया। सुमेर भी चुप थे।

थोड़ी देर बाद जगदीश बोला—"किंतु कुबेर की नीयत पर शक करने को जी नहीं चाहता। परंतु एक बात ऐसी है, जिसके प्रलोभन में पड़कर कुबेर ऐसा कर भी सकता है। शायद तुम्हें वह बात नहीं मालूम?"

"वह क्या?" सुमेर ने साश्चर्य पूछा।

क्षण-भर चुप रहकर जगदीश ने फिर कहा—"कुबेर आशा का सबसे पुराना प्रेमी है, आशा भी कुबेर को प्रेम की दृष्टि से देखती रही है।'

सुमेर को याद आया कि कुबेर दादा का विवाह भी पहले आशा ही से ठीक हुआ था। जगदीश ने उसे नई उलझन में डाल दिया।

"कुबेर और आशा, दोनो एक दूसरे से जितना प्रेम करते थे, यह मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। उसके विधवा हो जाने पर भी तथा किरण का विरोध होने पर भी कुबेर ने उसे अपने घर लाकर रक्खा था।"

सुमेर का दिमाग चक्कर खा रहा था। कुबेर के शुष्क व्यवहार की तह में सुमेर को एक नई वस्तु मिल गई।

"आपकी बात मैं समझ रहा हूँ। संभव है, दादा ने सारा कुचक्र बड़ी बुद्धिमानी से रचा हो। मैं तो . . ."

बात काटकर जगदीश ने कहा—"और इस प्रेम-कांड के बीच ही में तुम दाल-भात में मूसलचंद की तरह आ कूदे। बस, आगे तुम स्वयं समझ सकते हो।"

सुमेर चिंता-मग्न थे। जगदीश ने कहा—"उठो भाई! काफ़ी देर हो गई है।"

दोनो उठ खड़े हुए। मार्ग में सुमेर ने कहा—"आप ठहरे कहाँ हैं?"

"कोई ठिकाना भी हो। सिवा होटल के और ठौर कहाँ?" जगदीश बोला।

"तो फिर मेरे ही घर पर चलकर ठहरिए।"

"तुम्हें तकलीफ़ हो जायगी। व्यर्थ में तुम्हें कष्ट देने में लाभ?"

"नहीं, मैं अब आपको परदेशियों की तरह पड़ा न रहने दूँगा। चलिए, आपका सामान होटल से उठा लाएँ।" सुमेर ने ज़िद पकड़ते हुए कहा।

जगदीश तो यह चाहता ही था। आशा से मिलने की उसकी प्रबल इच्छा थी। कुछ 'ना-नू' करने के बाद राज़ी हो गया।

दोनो होटल पहुँचे, और एक ताँगे पर सामान लदवाकर चल दिए।

सुमेर को याद आया कि घर मे तो एक दाना भी नहीं, और मेहमान को लिए जा रहा हूँ। उन्हें फिर एक बार याद आया कि आशा सवेरे से भूखी बैठी होगी।

"भोजन कर चुके है आप?" सुमेर ने ताँगे ही में पूछा।

"भोजन तो नहीं किया, किंतु भूख भी नहीं। तुम्हारे यहाँ भी तो खाना बन चुका होगा। आओ, थोड़ा खाना बाज़ार मे ही लेते चले।" जगदीश ने कहा।

सुमेर ने आपत्ति न की। ताँगा रोककर जगदीश ने एक रुपए की पूड़ी-मिठाई ख़रीदी।

"इतनी क्या करोगे?" सुमेर ने पूछा।

"अरे भाई? बहुत दिन बाद आशा से मिलने जा रहा हूँ, उसका मुँह भी तो मीठा कराना पड़ेगा।"

सुमेर चुप रहे।

---

[१६]

जगदीश के आ जाने से आशा पर एक नई विपत्ति आ गई। उसे अपना मुँह दिखलाने में भी लज्जा मालूम पड़ती थी। उसने सोचा, वे दिन कितने सुनहरे थे, जब वह स्वर्ग की देवी-सी पवित्र थी, और आज वह कलंकिनी, पापिनी तथा वेश्या-सा जीवन व्यतीत कर रही है। क्या सोचा होगा जगदीश ने मुझे इस दशा में देखकर। उसके प्रेम-प्रस्ताव पर मैंने उसे कितना फटकारा था। हाय! मैं क्यों अपना कालिमा-युक्त मुँह दिखलाने के लिये संसार में जीवित रह गई।

उधर जगदीश ने घर पर अपना कब्ज़ा-सा जमा लिया था। सारे घर का ख़र्च उसी के कंधों पर था। उसने सुमेर को बड़े बड़े प्रलोभन देकर उल्लू बना रक्खा था। विपत्ति में पड़े हुए सुमेर जगदीश को अपना देवता समझ रहे थे।

किंतु यह सब कुछ सुमेर के लिये न था। जगदीश आशा का पुजारी था। वह अब दिन-रात उसे अतृप्त नेत्रों से देखा करता। सुमेर दिन-भर शहर का चक्कर लगाते किसी नौकरी की खोज में, और जगदीश दिन-भर सुख-शय्या पर लेटकर आशा पर आशा लगाए अपने नेत्रों को सफल किया करता।

सुमेर जगदीश के एहसानों से दबते-से जा रहे थे। उन्हें जगदीश की कोई बात बुरी न लगती।

एक दिन जगदीश ने सुमेर से बिना पूछे ही, दूसरा मकान ३०) मासिक पर ठीक कर लिया। सुमेर ने आपत्ति न की।

मकान बदल दिया गया। अब जगदीश को पूर्ण स्वतन्त्रता थी। मकान भली भाँति सजा दिया गया। ऐशोआराम के सभी सामान जुटा दिए गए। आशा सब कुछ समझ रही थी, किंतु वह चुप थी। जगदीश के आगे अब सुमेर के पास उसकी कोई भी फ़रियाद न चलती थी।

सुमेर का पतन हो चला था। वह सब कुछ समझते हुए भी समझ न रहे थे। उन्होंने कभी कष्ट के दिन न देखे थे, किंतु विपत्ति के एक ही झोंके ने उनकी तबियत हरी कर दी। उनके लिये कष्टों का सहना अब असह्य था।

और आशा? वह विवश थी। वह जगदीश को भली भाँति जानती थी, और समझ रही थी कि मुझी को चंगुल में फाँसने के लिये बंधन कसे जा रहे हैं।

एक दिन जगदीश सन्ध्या के समय घूमने निकल गया। सुमेर घर पर थे। आशा ने अवसर पाकर कहा—"इस तरह कब तक पराए धन पर निर्वाह किया जायगा?"

सुमेर ने नीचा सिर किए हुए ही कह दिया—"पराया धन कैसा? जगदीश भी तो अपने ही हैं।"

आशा क्षण-भर चुप रही, फिर बोली—"किंतु फिर भी उनकी यह अकारण कृपा हम पर कब तक लदती रहेगी?"

"तो इससे तुम्हारे हस्तक्षेप करने की क्या ज़रूरत? मैं अपना भविष्य स्वयं सोच सकता हूँ।" सुमेर ने उत्तर दिया।

"किंतु मैं जगदीश के साथ इस प्रकार अधिक दिन रहना पसंद नहीं करती।" आशा के मुँह से निकला।

"व्यर्थ की बातें सुनने का मेरे पास समय नहीं।" कहते हुए सुमेर बाहर चले दिए।

आशा को सुमेर के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य था। उसने

सोचा, कितना पतन हो गया है इनका। हाय! अब मेरे लिये क्या रास्ता हो सकता है?

किंतु उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं जगदीश से अपनी रक्षा करूँगी।

एक दिन दोपहर को आशा पलँग पर लेटी हुई थी, सुमेर घर पर न थे। उसी समय जगदीश ने वहाँ आकर कहा—"यह भी लेटने का समय है आशा!"

आशा उठकर बैठ गई। उसे जगदीश का वहाँ आना अच्छा न लगा। वह चुप बैठी रही।

"मुझसे क्या नाराज़ रहती हो आशा?" उसने उसके थोड़े निकट आकर कहा।

"मैं कुछ नहीं बतलाना चाहती। आप कृपा कर अपने कमरे में जायँ।" आशा ने रुखाई से कहा।

"आशा! मैं कब तक तुम्हारी आशा में रहूँ? मैं क्या तुम्हें इतना नापसंद हूँ?" जगदीश ने उसका हाथ अपने हाथ में लेने की चेष्टा करते हुए कहा।

आशा हाथ झटककर खड़ी हो गई। उसने हाँफते हुए कहा—"आप यहाँ से चले जायँ। आप कृपा कर उनके सामने ही मुझसे बातें किया करें। जाइए।"

जगदीश ने हँसकर कहा—"अब तुम मेरी हो चुकी हो। मैं कुछ देवेंद्र से भी गया-बीता थोड़े ही हूँ। मैंने तो सब कुछ तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया है।"

आशा खड़ी हुई हाँफ रही थी। उसने दरवाज़े के पास खड़े होते हुए कहा—"आप व्यर्थ की बातें बक रहे हैं। कृपा कर आप यहाँ से चले जायँ। मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ।"

जगदीश पागल हो रहा था। उसने झपटकर आशा को पकड़

लिया। आशा छूटने के लिये छटपटाने लगी—"छोड़ दो मुझे। मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ। छोड़ दो मुझे। छोड़ नीच!"

किंतु जगदीश कब सुननेवाला था। उसने उसे कसकर चिपटा लिया, और उसके सुंदर कपोलों पर एक चुंबन जड़ दिया।

आशा का मुँह तमतमा उठा। उसके वस्त्र फटकर चिथड़े-चिथड़े हो गए। जगदीश मनमाना सुख लूटने की चेष्टा करने लगा।

कोई उपाय न देखकर आशा ने कहा—"अच्छा, मुझे जरा छोड़ दो। मैं तुम्हारी बातों का उत्तर दूँगी।"

हँसकर जगदीश ने उसे छोड़ दिया। आशा वस्त्र फट जाने से बिलकुल अर्द्ध-नग्ना थी। वह वस्त्र बदलने के बहाने कोठरी में घुस गई, और किवाड़ बंद कर लिए।

हँसकर जगदीश ने कहा—"आज इतना ही काफी है। बाहर आ जाओ, मैं तुम्हें और अधिक तंग न करूँगा। किंतु यह समझ लेना, तुम्हें मुझसे कोई बचा न सकेगा। तुम्हें मेरी ही होकर रहना पड़ेगा। मैं घूमने जा रहा हूँ, निकलकर दरवाजा बंद कर लो।"

आशा ने दरवाज़ा न खोला। जगदीश चुपचाप कपड़े पहनकर बाहर निकल गया। बड़ी देर तक आशा अंदर रही, फिर बाहर निकलकर उसने सड़क पर जाने का दरवाज़ा बंद कर लिया, और पलँग पर लेटकर अपनी दशा पर आँसू बहाने लगी।

शाम को सुमेर लौटे। आज वह कुछ प्रसन्न थे। उन्हें एक दफ़्तर में ४०) मासिक की जगह मिल गई थी। पद ज़िम्मेदारी का था, अतएव उनसे २,०००) की नक़द जमानत माँगी गई थी। सुमेर ने सोचा, जगदीश यह काम कर देगा।

आशा खाना बना रही थी। सुमेर ने पूछा—"जगदीश कहाँ गए?"

"मुझे नहीं मालूम।" मुँह लटकाए हुए आशा ने कहा।

सुमेर को उसका ढंग अच्छा नहीं लगा। बोले—"मैं देखता हूँ, तुम्हारी आदत दिन-पर दिन बिगड़ती ही जा रही है। तुमसे सीधी तरह बात भी नहीं की जाती ?"

आशा के आँसू बह चले। उन्हें आँचल से पोंछ वह खाना बनाने में लगी रही। सुमेर कपड़े उतारने अंदर चले गए।

आशा निरंतर रोती रही। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए सुमेर से जाकर कहा—"खाना लाऊँ ?"

"तुम पहले जी-भरकर रो लो, फिर खाने के लिये पूछना।" सुमेर ने भौंहों पर बल डालते हुए कहा।

आशा और रो पड़ी। सुमेर ने चिल्लाकर कहा—"हट जाओ मेरे सामने से। यदि मेरे सामने ज्यादा कला की, तो अच्छा न होगा।"

आशा खड़ी रही। सुमेर भी कुछ न बोले। वह उठकर दूसरे कमरे में चले गए।

जगदीश आया। सुमेर के पास जाकर बोला—"सुस्त क्यों हो भाई ?"

सुमेर ने बरबस प्रसन्नता लाते हुए कहा—"कुछ नहीं।"

"खाना खा चुके ?"

"नहीं। मैं आज खाना नहीं खाऊँगा।"

"क्यों ? यह सब चलने का नहीं। उठो। आशा ! कहाँ गई ? खाना लाओ।"

आशा कोठरी बंद किए लेटी थी। जगदीश ने कोठरी के किवाड़ों पर धक्का देते हुए कहा—" निकलिए भाभीजी ! आज क्या खाना भी नहीं मिलेगा ? आओ।"

आशा को उसकी बोली विष-तुल्य ज्ञात हुई। उसने जवाब नहीं दिया।

जगदीश सुमेर के पास पहुँचकर बोला—"क्या कुछ हुआ है ?"

आशा आकर भोजन परोसने लगी। जगदीश ने सुमेर से कहा—"आज क्या कुछ तुम दोनो में झगड़ा हुआ है ? क्यों आशा ?"

आशा कुछ न बोली। उसने थाली लाकर सामने रख दी।

जगदीश आशा से बोला—"आओ, तुम भी बैठ जाओ।"

आशा चुपचाप बैठ गई। सुमेर और जगदीश ने खाना शुरू कर दिया।

"तुम भी खाओ न ?" जगदीश ने कहा।

आशा चुपचाप बैठी रही।

"खाओ।" जगदीश ने फिर कहा।

आशा हिली भी नहीं।

"खा क्यों नहीं लेतीं ?" सुमेर ने आज्ञा के तौर पर कहा।

"मैं नहीं खाऊँगी।" आशा ने क्रुद्ध भाव से कहा।

"तो मैं भी नहीं खाऊँगा।" जगदीश ने खाने से हाथ खींच लिया।

आशा को जगदीश की बदमाशी और सुमेर की कायरता पर क्रोध आ रहा था। वह उठकर चल दी।

"इधर आओ।" सुमेर ने लाल-लाल आँखें करके कहा।

आशा नहीं आई। सुमेर को जगदीश का यह अपमान अच्छा न लगा। वह उठकर आशा की ओर बढ़ा। आशा खड़ी हो गई।

"तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता ?' उन्होंने आग-बबूला होते हुए कहा।

"क्या ?' आशा ने कहा।

"चलो, खाओ चलकर।" सुमेर ने आज्ञा दी।

"मैं उनके साथ नहीं खाऊँगी।" आशा के मुँह से निकला।

"क्या कहा ?" सुमेर ने काँपते हुए कहा ।

"जाने दीजिए, भाई साहब । मैंने तो हँसी में कहा था । रहने दीजिए ।" जगदीश ने मुस्किराकर कहा ।

"यह कुछ नहीं । मैं अपने मित्र का इतना अपमान बरदाश्त न कर सकूँगा । इसे खाना पड़ेगा ।" सुमेर ने काँपते हुए कहा ।

"और मैंने यह तय कर लिया है कि मैं इनके साथ नहीं खाऊँगी । जो शख्स अकेले में मुझ पर अत्याचार करे, मैं उसके साथ कदापि नहीं खा सकती । तुम्हारे तो आँखें नहीं .... "

'तड़ाक' से एक थप्पड़ आशा के गाल पर पड़ा । सुमेर पागल हो रहे थे । आशा की आँखों के सामने अँधेरा आ गया ।

"हरामजादी ! आगे बढ़ती चली जाती है । तुझे अपने ही-से सब नज़र आते हैं । हड्डियाँ तोड़कर धर दूँगा ।" सुमेर ने क्रोध से बेंत की तरह काँपते हुए कहा ।

"मैं ख़राब हूँ, तो ख़राब रहने दीजिए । मैं तो आपको ..."

सुमेर दैत्य हो उठे । उन्होंने आशा को बाल पकड़कर घसीटा, तथा ज़मीन पर पटक दिया, और लातों, घूसों और थप्पड़ों की वर्षा करने लगे ।

"जाने दीजिए, जाने दीजिए ।" कहते हुए जगदीश दौड़ पड़ा ।

"आप अलग रहिए । मैं इस हरामज़ादी को ठीक किए देता हूँ ।" कहकर सुमेर ने फिर लात व घूँसों की वर्षा की ।

आशा का सिर फूट गया, और उसके कपड़े रक्त-रंजित हो गए । जी-भरकर पीटने के बाद सुमेर ने उसे छोड़ा । घायल आशा दीवार के सहारे आँख बंद करके लेट रही ।

"यह क्या किया आपने ? आप भी कमाल करते हैं ज़रा-सी बात पर । उठिए, उसे ठीक करिए ।" जगदीश ने सुमेर से कहा ।

"मरने दो ।" सुमेर ने कहा ।

मिनट-भर बाद आशा कराहकर धीरे से उठी। स्नानागार में जाकर, उसने अपने घावों को धोकर कपड़े बदले, और धीरे से आकर पलँग पर लेट रही।

सुमेर को अब पश्चात्ताप हो रहा था। प्राय देखा गया है कि सहसाकर्मी लोगों को अपने कुकृत्यों पर इसी प्रकार पछताना पड़ता है। इस प्रकार के व्यक्ति कभी आगा-पीछा नहीं सोचते, और तात्कालिक भावना में बहकर बड़े ऊट-पटाँग काम कर डालते हैं। सुमेर भी सहसाकर्मी हैं, उन पर अँगरेज़ी की यह कहावत—"Look before you leap"—चरितार्थ होती है।

थोड़ी देर बाद जगदीश ने सुमेर से पूछा—"कहिए, उस नौकरी का क्या हुआ?"

सुमेर ने उसे सब कुछ बताया, और बोले—"अब केवल आपकी सहायता की आवश्यकता है।"

"यह कौन-सा मुश्किल काम है?" जगदीश ने कहा—"तुम कल ही ज़मानत का रुपया जमा कर सकते हो।"

सुमेर प्रसन्न हो गए। जगदीश थोड़ी देर में उठकर सोने चला गया। सुमेर थोड़ी देर तक बैठे रहे, फिर धीरे से आशा के कमरे में घुसे।

आशा चुपचाप चादर से अपने को लपेटे पड़ी थी। सुमेर ने सुना, वह धीरे-धीरे पीड़ा से कराह रही थी।

सुमेर को बोलने का साहस न हुआ। वह थोड़ी देर तक खड़े रहे, फिर अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट रहे।

दूसरे दिन जगदीश से रुपए लेकर वह अपने काम पर चले गए। आशा सदा की भाँति उठकर धीरे-धीरे अपना काम करने लगी। वह आवश्यकता से अधिक सुस्त थी।

थोड़ी देर में जगदीश ने उससे आकर कहा—"तबियत कैसी है आशा?"

आशा ने घृणा से अपना मुँह उधर से फेर लिया। जगदीश ने कहा—"तुम्हें मेरी वजह से ही इतना कष्ट उठाना पड़ा। मैं सुमेर को इतना क्रोधी न समझता था।"

आशा कुछ न बोली। जगदीश चुपचाप चला गया। उसने सोचा, आज इसे छेड़ना ठीक नहीं।

सुमेर को नौकरी मिल गई, किन्तु आशा को इससे प्रसन्नता न थी। उसकी दृष्टि में सुमेर पतन की चरम सीमा तक पहुँच चुके थे। किंतु उपाय ?

उपाय कुछ न था। आशा काफ़ी पैर चुकी थी। आज उसे अपनी जीवन-भर की भूलों पर पश्चात्ताप हो रहा था। उसने सोचा, क्या हिंदू-समाज में विधवा बनना ही बड़ा भारी अभिशाप है? कहीं आदर नहीं। कहीं प्रेम नहीं। किंतु देवेंद्र तो प्रेम करता था। फिर उसे छोड़ने, उसे धोखा देने का फल क्या हाथोंहाथ नहीं मिल रहा है? और कुबेर? तब वैधव्य को दोष कैसा? यह तो व्यक्तिगत पतन है मेरा। सुमेर? क्या अब उनके हृदय में मेरे प्रति ज़रा भी प्रेम नहीं रह गया? ओफ़्! जिसे प्रेम का देवता समझकर पूजा, वह इतना नृशंस! हे भगवान्! अब क्या होगा? उपाय?

किंतु उपाय अब आशा की भावनाओं से दूर था। रात-भर करवटें बदलते रहने पर भी उसे कोई उपाय सूझा या नहीं, यह हमें नहीं मालूम, किंतु ....

दूसरे दिन सबेरे आशा का पलँग खाली था। वह कहाँ गई, कौन जाने?

---

[२०]

सुमेर ने झपटकर देवेंद्र का गला पकड़ लिया, और क्रोध से काँपते हुए कहा—"बता दुष्ट ! आशा कहाँ है ?"

देवेंद्र भौचक्का-सा रह गया। अपने को छुड़ाने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—"पागल हो गए हो सुमेर ? कहाँ है आशा ?"

सुमेर ने मुक्का तानते हुए कहा—"तू मुझसे बचकर नहीं जा सकता। बता, तूने आशा को कहाँ छिपा रक्खा है ?"

देवेंद्र ने झटका देकर अपने को छुड़ा लिया, और कहा—"लड़कपन की बातें मत करो। यदि ठीक से बातें करना नहीं जानते, तो निकल जाओ मेरे घर से। तुम्हारा सिर कुछ फिरा-सा जान पड़ता है।"

सुमेर चुप खड़े रहे। देवेंद्र ने कहा—"मुझे आज मालूम हुआ कि तुमने ही आशा को मेरे घर से उड़ाया था। तुम महा बुद्धि-हीन हो, तुमने उसका जीवन नष्ट कर दिया। बेचारी आशा।"

देवेंद्र ने एक श्वास ली।

सुमेर चुप खड़े थे। देवेंद्र ने फिर कहा—"उसने मेरा जीवन सुधार दिया, किंतु तुमसे यह भी न देखा गया। तुमने अवश्य उसे घोर कष्ट दिया होगा, नहीं तो क्या वह तुम्हें छोड़नेवाली थी ? तुम्हारे पीछे उसने मेरे इतने बड़े वैभव को ठुकरा दिया, और तुम . . ."

देवेंद्र आवेश में काँपने लगा। उसने फिर कहा—"तुम जीवन-भर सुखी न हो सकोगे। आशा देवी है, तुमने उसकी क़द्र न की। जाओ, निकल जाओ यहाँ से।"

सुमेर चुपचाप जाने लगा। देवेंद्र ने कहा—"वह कब तुम्हारे यहाँ से गई ?"

उसका मुँह खुला। धीरे से बोला—"आज सवेरे से ही ...."

बात काटकर देवेंद्र बोला—"कल कोई घटना हुई थी क्या ? उसे मेरे पास आना था।"

सुमेर चुपचाप घर के बाहर हो गए।

देवेंद्र के मुँह से निकला—"वह मेरे पास आ सकती थी, किंतु संकोच वश नहीं आई। अब . . ."

देवेंद्र ध्यान-मग्न हो गया।

❀ ❀ ❀

घर लौटने पर जगदीश ने पूछा—"कुछ पता चला ?"

सुमेर ने सिर हिला दिया।

क्षण-भर चुप रहकर जगदीश ने कहा—"मुझे तो उस पर कभी विश्वास न हुआ।"

सुमेर चुप रहे।

जगदीश ने फिर कहा—"इस प्रकार की स्त्रियों का विश्वास ही क्या ? उन्हें तो नित नए की खोज रहती है।"

सुमेर ने कुछ न कहा। न-जाने क्यों उन्हें विश्वास हो चला था कि आशा अब इस संसार में नहीं।

जगदीश अपने कमरे में चला गया। आशा के लिये पानी की तरह रुपया बहाकर भी वह हाथ मलकर रह गया।

सुमेर अब किसी से बात न करते। चुपचाप दफ़्तर जाते, और वहाँ से लौटने पर हाथ-मुँह धोकर किसी सूने स्थान पर पहुँचते, और घंटों अकेले बैठे रहते। घर आकर, खा पीकर पलँग पर सवेरे तक लेटे रहते। कभी सो जाते, और कभी रात-रात-भर आँखें

भोले पडे रहते। जगदीश से भी अब उनकी विशेष बातचीत न होती।

जगदीश के लिये भी अब वहाँ क्या था? एक दिन बिस्तरा वगैरा बाँधकर उसने सुमेर से कहा—"आज गाँव जा रहा हूँ।"

बिना किसी प्रकार की आपत्ति किए ही सुमेर ने कहा—"कब तक लौटोगे?"

"कुछ ठीक नहीं।" जगदीश ने उत्तर दिया।

सुमेर फिर कुछ न बोले। जगदीश चला गया।

सुमेर ने वह घर छोड दिया, क्योंकि इतना किराया अब वह न दे सकते थे। एक छोटी-सी कोठरी में गुज़र करने लगे। थोडे ही दिनों में वह सूखकर काँटा हो गए। अब उनसे दफ्तर का काम भी न होता था। अत का मैनेजर ने खीझकर उन्हें अलग कर दिया।

सुमेर यह सब पहले ही से जानते थे। उन्हें नौकरी छूटने का रंज न था। उनकी ज़मानत का रुपया उन्हें वापस मिल गया।

एक दिन उमंग में आकर उन्होंने कुछ देश तथा समाज की सेवा करने की ठानी।

काँग्रेस के मंत्री के पास जाकर एक दिन उन्होंने कहा—"क्या मैं कुछ सेवा कर सकता हूँ?"

उन दिनों काँग्रेस की धूम थी। सत्याग्रह-आंदोलन ज़ोरों पर छिड़ा हुआ था। मंत्रीजी को स्वयंसेवकों की आवश्यकता थी। उन्होंने सुमेर को सिर से पैर तक देखकर कहा—"अच्छी बात है। किन्तु जेल जा सकोगे? सारे सुखों का त्याग करना पड़ता है देश-सेवा के लिये।"

सुमेर ने उत्तर दिया—"आप निश्चिन्त रहें। मैं फाँसी पर

चढने में भी आनाकानी न करूँगा । किंतु आपको मुझे सांसारिक बंधन से मुक्त करने के लिये एक उपकार करना पड़ेगा ?"

"क्या ?" कहकर मंत्रीजी ने उनकी ओर गौर से देखा ।

सुमेर ने अपने फटे कपड़ों के भीतर से एक नोटों का पुलिंदा निकालकर मंत्रीजी के आगे धर दिया ।

मंत्रीजी ने साश्चर्य उनके मुँह की ओर देखते हुए कहा—"यह क्या ?"

"ये हैं २,०००) के नोट । मेरे साथ-ही-साथ आप इसे भी देश की संपत्ति समझ लें । बस ।" सुमेर ने हाथ जोड़ते हुए कहा ।

मंत्रीजी उनके मुँह की ओर देखते रह गए । बोले—"क्या आश्रम में रहोगे ?"

"जहाँ आप स्थान देंगे ।" उन्होंने उत्तर दिया ।

सुमेर का प्रायश्चित्त आरंभ हो गया था । वह जुटकर कांग्रेस का कार्य करने लगे । उन्होंने देहातों में घूम-घूमकर किसानों का संगठन किया । थोड़े ही दिनों में वह चारो ओर प्रसिद्ध हो गए । वह ज़मींदारों की आँखों में काँटों की तरह चुभने लगे ।

राजगाँव के कारिंदा मनोहरसिंह ने एक दिन उनसे भेंट करके कहा—"आप अपने लिये काँटे बो रहे हैं पंडितजी ! आप भले घर के लड़के हैं, आपको यह सब शोभा नहीं देता ।"

सुमेर ने मुस्किराकर कहा—"मैं तो कांग्रेस का एक सिपाही-मात्र हूँ । अच्छा हो, यदि आप अन्य नेताओं से बातचीत करें । मुझे तो अपना कर्तव्य पालन करना है ।"

मनोहरसिंह ने कहा—"हमारे मालिक तो स्वयं ही बड़े रहम-दिल आदमी हैं, लेकिन देखता हूँ, आप लोग भी भले ही आदमी

के पीछे ग्राम तौर से पड़ जाते हैं। यहाँ ग्रामेस-काग्रेस की कुछ चलेगी नहीं।"

हँसकर सुमेर ने कहा—"अच्छा ठाकुर साहब! अब इजाज़त दीजिए।"

सुमेर चल दिए। उनके चले जाने पर मनोहरसिंह ने अपने मातहतों के आगे मूछ पर हाथ फेरते हुए कहा—"सार सालों को गिरा दूँगा एक दिन। टके के आदमी और लड़ने चले हैं हमारे मालिकों से। न-जाने कहाँ से आ भी तो जाते हैं। 'देश का सुरदा और नानामऊ का घाट।' हत्तेरे ज़माने की।"

प० रामाधार तमाखू मुँह में धरते हुए बोले—"मुदा है आजु-कालिह कागरेस का जोरजार। किसान तो जानौ पगलाय उठे हैं। पैसा वसूल होय के एकौ लच्छन दिखाई नाहीं परत।"

बुधुआ बोला—"ठीक कहत हौ पडित। याकौ छदाम का डौला नाहीं देखि परत।"

झल्लाकर मनोहरसिंह ने कहा—"यह सब मालिकों की ढिलाई है, नहीं तो सारे जूतन के बाद सजो कह दीन जाई। काहे रे बुधुआ! हम सुना है, तू हौ कागरेस का मेंबर बन गया है। काहे रे?"

घिटपिटाकर बुधुआ ने कहा—"नाहीं ठाकुर! हम आगरेस-कागरेस का जानी। उइ दिन सबै पाछु पड़िकै चारि आना लै लीन्हेनि! और हम काला सा न जाहिन।"

"अबे साले, तब और कैसे मेंबर बनत है। देख तो, तेरे याकी रही रह जाय।" ठाकुर साहब ने ओठ पीसते हुए कहा।

बुधुआ चुप रह गया। ठाकुर चले गए। प० रामाधार ने कहा—"मालुम पड़ि जाई सब सोटा-डाल के भाव। बहुत तोड़ फुलाइन हैं ठाकुर। कांगरेस भरि देई सबी सब मो।"

बुधुआ बोला—"बड़ा जोर' है कांगरेस का पंडित। अब पूछौ, कैसे न बनीं मेंबर?"

सिर हिलाकर रामाधार बोले—"ठीक कहत हौ। डरयो न ठाकुर ते। कइ का लेई मार?"

"हम नहीं डेराइत हैं।" बुधुआ बोला—"तनिक तमाखू तो देव, मुंह फिकर रहा है।"

---

[२१]

गौर गाँव में आंदोलन छिड़ जाने से कुबेर बड़ी कठिनाई में पड़ गए। सारी ज़मींदारी में एक छोर से दूसरी छोर तक आग लगी हुई थी। कारिंदों के ज़ुल्म से रियासत तंग थी। कुबेर ने लाख सुधार के प्रयत्न किए, किंतु पियादे से लेकर मैनेजर तक जब सभी डाकू और लुटेरे हों, तो फिर स्थिति का सँभालना मुश्किल हो जाता है। कुबेर ने सभी कारिंदों को आज्ञा दे रक्खी थी कि ज़्यादती या अत्याचार न होने पावे, किंतु मुँह पर हाँ हुज़ूरी के और कोई भी परिवर्तन कर्मचारियों के रवैए में नहीं हुआ। कुबेर यदि उन लोगों पर कड़ाई के साथ शासन करते, तो संभव था, कुछ सुधार होता, किंतु उनके आवश्यकता से अधिक दयाशील होने से ऐसा न हो सका। जिनके कारनामे पकड़े भी गए, उन्हें भी चेतावनी देकर छोड़ दिया गया।

आग सुलगती ही रही। ज्यों ही कांग्रेस ने पलीता दिखलाया, त्यों ही वह एक साथ भभक उठी। चारों ओर से लगान बंदी, संगठन और सत्याग्रह की गूँज उठने लगी।

कुबेर का ख़याल था कि उनके राज्य की ज़मींदारी में सभी तरह का अमन है, किंतु एकाएक आग लगी देखकर उन्होंने फ़ौरन् मैनेजर को तलब किया।

मैनेजर अँगरेज़ था, और नाम था मि० ब्राउन।

साहब के आने पर कुबेर ने पूछा—"यह सब हंगामा कैसा?"

"कोई बात नहीं। सब ठीक हो जायगा।" मि० ब्राउन

बोले—"हम सब चार दिन में ठंडा कर देंगे। कांग्रेसवाले भागे भागे फिरेंगे।"

मि० ब्राउन समझ रहे थे कि अन्य ज़मींदारों की भाँति कुबेर को भी कांग्रेस से नफ़रत होगी, अतएव कांग्रेस की बुराई करके साहब ने उन्हें खुश करने की चेष्टा की।

कुबेर को साहब की बात कुछ अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा—"लेकिन यह सब हुआ क्यों? रियाया चाहती क्या है?"

"वे सब बहुत बदमाश हैं। कुछ देना नहीं चाहते। हम सबको ठीक करेंगे।" साहब बोले।

"खिजरपुर में हालत बहुत खतरनाक है। जाइए, वहाँ इन्तज़ाम कीजिए। जाइए, लौटकर मिलिएगा।" कहकर कुबेर अन्दर चले गए।

किरण ने कहा—"साहब बेचारा तो बहुत अच्छी तरह से बात करता था, लेकिन तुम टेढ़े ही हुए जाते हो।"

सूखी हँसी हँसकर कुबेर ने कहा—"ये साले अपने को वाइसराय से कम थोड़े समझते हैं। अपनी शैतानी तो कहेंगे नहीं, कांग्रेस को कोसने लगेंगे।"

"मगर ये कांग्रेसवाले हमारे पीछे क्यों पड़े हैं। हमसे-उनसे वास्ता? 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान।' खूब रही साहब।" किरण ने किंचित बिगड़कर कहा।

"कांग्रेस कोई बुरी चीज़ थोड़े ही है। बुरे तो वास्तव में हमारे अपने ही आदमी हैं, जो रैयत को खुश नहीं रख सकते। कांग्रेस-वालों का क्या क़सूर?" कुबेर ने जवाब दिया।

"अच्छा, हमारे आदमी बुरे हैं या भले, देवता हैं या राक्षस, इससे कांग्रेस को क्या?" किरण ने कहा।

"यह बात नहीं। कांग्रेस का तो कर्तव्य है कि वह जनता की

भलाई करे, और इसीलिये वह कर भी रही है।" कुबेर ने उत्तर दिया।

"तब यह कहो कि आप भी कांग्रेसमैन हैं। यह बात है। तब मिली सब धूल में जायदाद।" किरण ने मुँह बनाकर कहा।

"अरी पगली! जितने हिंदुस्थानी हैं, सभी कांग्रेसमैन हैं। सभी देश की भलाई चाहते हैं।" कहते हुए कुबेर बाहर चल दिए।

किंतु किरण की समझ में न आया कि जो कांग्रेस हमारा इतना नुकसान कर रही है, उससे इन्हें इतनी लगन क्यों है।

❀ ❀ ❀

अंत को खिजरपुर की समस्या ने भीषण रूप धारण करके ही छोड़ा। मि० ब्राउन के किए-धरे कुछ न बन पड़ा। ज़मींदार के नौकरों और कर्मचारियों का भीषण रूप से सामाजिक बहिष्कार भी था।

. अंत में दमन शुरू हुआ। निरीह और निःशस्त्र जनता की झोंपड़ियाँ पुलिस की लाठियों से तड़ातड़ टूटने लगीं। मि० ब्राउन ने दमन की हद कर दी। घरों में घुस-घुसकर औरतों-बच्चों को पीटा तथा लूटा गया, और झोपड़ों में आग लगा दी गई। सारी प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। घबराकर लोगों ने सत्याग्रह करने की ठानी। पुलिस ने सैकड़ों को गिरफ़्तार किया।

कुछ महिलाएँ भी गिरफ्तार की गईं। उनकी नेत्री शांतिदेवी को भी पकड़कर हवालात में ठूँस दिया गया।

जिस समय शांतिदेवी पकड़कर मि० ब्राउन के सामने बुलाई गईं, तो उन्होंने आने से इनकार कर दिया। मि० ब्राउन का पारा चढ़ा हुआ था, उन्होंने सिपाहियों को ज़बरदस्ती खींचकर लाने की आज्ञा दी।

मि० ब्राउन ने हँसते हुए कहा—"ऐ, खूबसूरत छोकरी, टुम ये सब क्या कर रही हो ?"

शांतिदेवी ने शेरनी की तरह गरजकर कहा—"लानत है तुम्हारी हुकूमत और सभ्यता पर ! क्या अँगरेज़ औरतों की इसी प्रकार बेइज़्ज़ती करते हैं ? थू है !"

मि० ब्राउन ने कहा—"टुम लोग क्यों बदमाशी करटा है ! ऊपर से गाली बकटा है ! हम टुमको सजा डेगा।"

मि० ब्राउन ने शांतिदेवी का हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीटना चाहा। शांतिदेवी अनन्य सुंदरी महिला थी। मि० ब्राउन भारतवर्ष को विलायत समझ रहे थे। उन्होंने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—"हम टुमको पसंद करटा है। टुम हमारा बीबी बनेगा ?"

शांतिदेवी का क्रोध से बुरा हाल था, उन्होंने भरपूर ज़ोर लगाकर अपने को अलग कर लिया, और जूता उतारकर मि० ब्राउन पर टूट पड़ीं।

जब तक सिपाही दौड़ें, तब तक उन्होंने दस-पाँच हाथ साहब पर जड़ दिए। साहब उनके मुँह की ओर आश्चर्य से देखते रह गए। सिपाहियों ने दौड़कर उन्हें पकड़ लिया।

साहब का क्रोध से बुरा हाल था। शांतिदेवी भी क्रोध से काँप रही थीं।

मि० ब्राउन ने सिपाहियों से कहा—"इस हरामजादी को नंगा करो। हम इसके बेंट लगाएगा।"

सिपाही साहब के मुँह की ओर देखते रह गए। साहब ने ज़ोर से पैर पटककर कहा—"डेखते क्या हो ? नंगा करो, नंगा करो।"

सिपाहियों ने एक दूसरे की ओर देखा, और चुपचाप शांतिदेवी के वस्त्रों पर हाथ डालना शुरू किया।

शांतिदेवी अब बड़े कष्ट में पड़ीं। उन्हें कोई बचानेवाला न था।

वह भरपूर ज़ोर लगाकर अपने कपड़ों को बचाने लगीं। सिपाही भी जान बूझकर वस्त्र उतारने में देर कर रहे थे।

"जल्दी करो।" साहब ने चिल्लाकर कहा।

सिपाहियों ने शान्तिदेवी की धोती पकड़कर खींचना शुरू किया। अर्द्ध नग्ना-सी शान्तिदेवी ने धोती से लिपटकर अपने को बचाने की चेष्टा की। कोई और उपाय न देखकर उन्होंने साहब से ही प्रार्थना की। साहब ने हँसकर कहा—"टुम बोट खराब औरट है।" (सिपाहियों से) "अच्छा, छोड़ दो।"

सिपाहियों ने जो पाया। शान्तिदेवी के सारे वस्त्र फट चुके थे। वह चुपचाप एक कोने में जाकर खड़ी हो गई। उस समय वह किं-कर्तव्य-विमूढ़ थीं। साहब कुरसी पर बैठे हुए मुस्किरा रहे थे।

थोड़ी देर में एक कर्मचारी ने आकर सूचना दी कि शान्तिदेवी को छुड़ाने के लिये आई हुई एक उत्तेजित भीड़ ने थाने में आग लगा दी है।

मि० ब्राउन के पैरों के नीचे से मानो धरती-सी खिसक गई। उन्होंने घबराकर नौकरों से कहा—"इस औरट को बाहर निकाल-कर कोठी का फाटक फौरन् बन्द करो।

शान्तिदेवी अन्य महिलाओं के साथ बाहर कर दी गई, और फाटक बंद कर दिया गया। उस समय बड़ी ज़ोरों का कोलाहल सुनाई दिया, और एक बहुत बड़ी भीड़ कोठी की ओर आती हुई दिखाई दी। शान्तिदेवी ने समझा, अब परिस्थिति बड़ी भयानक है, फिर भी उन्होंने निश्चय किया कि मैं जनता को शान्त करूँगी। 'शान्तिदेवी ज़िन्दाबाद', 'ज़मींदारों का नाश हो' आदि नारों के साथ भीड़ ज़मींदार की कोठी के सामने आ पहुँची। शान्तिदेवी को देखते ही जनता आह्लादित हो उठी। लोगों ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया और तुमुल जय-घोष से आकाश गूँजने लगा।

"बदमाश मैनेजर कहाँ है ?" उत्तेजित भीड़ से आवाज़ आई।

पहले तो शांतिदेवी घबरा गईं, फिर उन्होंने साहस से काम लिया। उन्होंने हाथ उठाकर जनता से शांत रहने को कहा। भीड़ शांत हो जाने पर एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर शांतिदेवी ने कहना शुरू किया—

"भाइयो,

हमें प्रत्येक दशा में शांत रहना चाहिए। अत्याचारों का अंत अहिंसा के ही शस्त्र द्वारा किया जा सकता है। रक्त-पात द्वारा आपको अधिकार न मिलेंगे। यदि आपने हिंसा का आश्रय लिया, तो आप कुचल दिए जायँगे, और आपका आंदोलन सदा के लिये असफलता की गंगा में डूबा जायगा। और, यदि आप शांत रहे, तो . . ."

भीड़ से आवाज़ आई—"हम कब तक शांत रह सकते हैं ? हमारी बहू-बेटियों पर हाथ छोड़ा जाता है।"

शांतिदेवी ने उच्च स्वर से कहा—"बिना त्याग के संसार में कुछ नहीं मिल सकता। हमें सारे अत्याचार सीना खोलकर सहन करने चाहिए।"

इसी बीच में पीछे की ओर से हल्ला मचने लगा। लोग इधर-उधर भागने लगे। 'पुलिस पुलिस' की चारो ओर से आवाज़ें आने लगीं, और थोड़ी ही देर में एकत्र तथा भागती हुई जनता पर लाठियों की बौछार होने लगी। पीछे से गोलियाँ भी चल पड़ीं। लोग कुत्तों की मौत मरने लगे। थोड़ी ही देर में मैदान साफ़ हो गया, केवल लाशें और मरणासन्न लोग ही दिखलाई पड़ रहे थे।

पुलिस ने लगभग १०० व्यक्तियों को गिरफ्तार भी कर लिया, जिसमें शांतिदेवी भी थीं। सारा गाँव श्मशान मालूम पड़ने लगा। पुलिस और ज़मींदार के आदमियों का आतंक चारो ओर छाया

हुआ था। जनता भयभीत थी। नेता लोग ढूँढ-ढूँढकर पकड़ लिए गए। सारा आंदोलन ठंडा पड़ गया।

जिस दिन यह दुर्घटना हुई, उसके दूसरे ही दिन कुबेरचंद वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आंदोलन और दमन की सारी कहानी सुनी, जिससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। मि० ब्राउन के अत्याचार की कहानी सुनकर उन्हें क्षोभ भी हुआ और क्रोध भी।

दूसरे ही दिन से उन्होंने घर-घर घूमकर लोगों को सहायता देने का निश्चय किया, किंतु लोग घर से बाहर निकलते हुए भी डरते थे। कुबेर ने चुने हुए व्यक्तियों को अपने यहाँ इकट्ठा करके उन्हें आश्वासन दिया। किंतु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जब तक हमारे आदमी जेलों से मुक्त न कर दिए जायँगे, और मि० ब्राउन के कार्यों की निष्पक्ष जाँच करके उन्हें दंड न दिया जायगा, तब तक जनता का विश्वास उन पर नहीं जम सकता।

उसी दिन शाम को कुबेर ने मि० ब्राउन को बुला भेजा। कुबेर ने देखा, इतना बड़ा पैशाचिक कांड करने के बाद भी उसके चेहरे पर ज़रा भी शिकन न थी।

कुबेर ने कहा—"बड़े दुःख का विषय है मि० ब्राउन कि तुमने अपने कृत्यों से गाँव-का-गाँव उजाड़ दिया। क्या इसी प्रकार शांति स्थापित की जा सकती है? तुम्हारे कार्यों की जाँच की जायगी।"

मि० ब्राउन ने आश्चर्य से कुबेर की ओर देखकर कहा—"आप क्या कह रहे हैं। मैं बड़ी मुश्किल से पब्लिक को दबाने में सफल हो सका हूँ। अब ... ... "

कुबेरचंद थोड़ा उत्तेजित होकर बोले—"अच्छी शांति स्थापित की आपने। शासक अत्याचारों की कहानी सारे देश में फैलकर मेरी सब दयाका कहलायगी। आपके लिये यह कोई शर्म की बात है!"

मि० ब्राउन कुछ न समझे। कुबेर ने तय किया कि मैं इसके

विरुद्ध अवश्य कार्रवाई करूँगा। उन्होंने कोशिश करके गिरफ्तार किए हुए सभी व्यक्तियों को छुड़वा दिया।

शाम को जनता की ओर से एक बड़ी भारी सार्वजनिक सभा की गई, जिसमें सत्याग्रहियों की प्रशंसा और अधिकारियों की निंदा की गई। सभा में बोलते हुए ठाकुर रामसिंह ने कहा—"भाइयो, सारी करतूत हमारे अँगरेज मैनेजर की है। हमारे ज़मींदार साहब तो अच्छी प्रकृति के आदमी हैं। वह तो हमसे समझौता और सहायता करना चाहते हैं।"

श्रीमदनमोहन ने रामसिंह की बात का समर्थन किया। थोड़ी देर में शांतिदेवी बोलने के लिये खड़ी हुईं। दर्शकों ने कर-तल-ध्वनि की।

शांतिदेवी ने रंगमंच से बोलते हुए कहा—"आप लोगों ने ज़मींदार महोदय की भूरि-भूरि स्तुति की है। मैं आप लोगों को बतला देना चाहती हूँ कि आप गलत रास्ते पर हैं। ये ज़मींदार स्वयं तो सब कुछ करते हैं, किंतु उसका दोष कर्मचारियों पर लादते हैं। गाँव में इतना बड़ा रक्त-पात हो जाने पर भी कर्मचारियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई। वे आज भी मूछों पर ताव देकर हमारे आंदोलन की खिल्ली उड़ा रहे हैं। मुझे नहीं मालूम कि आप ज़मींदार की किस बात पर लट्टू होकर उनका गुण-गान कर रहे हैं। हम तो जीवन-भर साम्राज्यवाद के इन स्तंभों के विरुद्ध लड़ेंगे, चाहे हमें अपना सब कुछ बलिदान कर देना पड़े।"

ठा० रामसिंह ने खड़े होकर कहा—"किंतु ज़मींदार ने हम लोगों को समझौते की बातचीत करने के लिये आमंत्रित किया है। उनसे क्या कह दिया जाय?"

शांतिदेवी ने कहा—"तो आप लोग उनसे स्पष्ट बात क्यों

नहीं करते। आप लोग उनसे कह दीजिए कि हमारा और उनका किसी प्रकार का समझौता असम्भव है। हम तो ज़मींदारी-प्रथा का अंत चाहते हैं।"

जनता ने करतल-ध्वनि की। शान्तिदेवी ने उच्च स्वर से कहा—"यदि आप लोग बात करने से डरते हैं, तो मैं उनसे बात करने को तैयार हूँ।"

अंत में यह तय हुआ कि ठाकुर रामसिंह, प० मदनमोहन और शान्तिदेवी का एक डेपुटेशन ज़मींदार से मिलकर बातचीत करे। जनता की माँगों की एक सूची बनाई गई, जिसमें निम्न-लिखित शर्तें रक्खी गईं—

(१) गोली-कांड, लाठी-चार्ज तथा अन्य अत्याचारों की जाँच की जाय, और कर्मचारियों को दंड दिया जाय।

(२) मि० ब्राउन को मैनेजर के पद से पृथक् कर दिया जाय, तथा उनके विरुद्ध मामला चलाया जाय।

(३) किसानों की जो कुछ क्षति हुई है, वह पूरी की जाय।

(४) लगान आधा किया जाय, और बेगार बंद कर दी जाय।

(५) लोगों को नागरिक स्वतन्त्रता दी जाय।

दूसरे दिन सबेरे यह डेपुटेशन ज़मींदार से मिलने के लिये रवाना हो गया।

---

[२२]

कुबेर ने सोचा, मुझमें धन और ऐश्वर्य का मद तो नहीं आ गया। अवश्य, यह मद नहीं, तो क्या है? मेरा यह कर्तव्य था कि मैं निरीह व्यक्तियों की हत्या रोकता। किंतु—किंतु यह कैसे हो सकता था? अशिक्षित जनता पर शासन करना हँसी-खेल नहीं। कमबख्त मानते ही नहीं। पूछिए, लगान न देंगे, तो रुपया कहाँ से आयगा......तो क्या फिर रुपयों के लिये ही हत्या? हाय! धन का यही तो अभिशाप है। आज न-जाने कितनी माताएँ मेरे नाम पर घृणा के आँसू बहा रही होंगी? बड़ा बुरा हुआ। यदि मैं वहाँ जा सकता, यदि उन्हें समझा-बुझाकर राज़ी कर सकता, तो ...... किंतु नर्म गद्दों पर आराम से लेटे हुए मुझे वहाँ जाने की चिंता क्यों होती? हाय धन! तूने—तूने तो ...... और इसी धन के कारण भाई भी तो सदा के लिये चला गया। आखिर इस ऐश्वर्य में था क्या? धन्य हैं वे लोग, जो देश के लिये अपना रक्त बहाकर अमर हो गए! मैं तो महिलाओं से भी गया-गुज़रा हूँ। हाँ, देखो, जहाँ शांतिदेवी-ऐसी स्त्रियाँ मौजूद हों, वहाँ देशोद्धार क्यों न हो। ऐसी ही वीर स्त्रियों से देश गौरवान्वित हो गया। इनका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। और मैं ...... मैंने अपना सारा जीवन यों ही नष्ट कर दिया। कितनी उमंगों और आशाओं को लेकर जीवन-संग्राम में आया था, किंतु

समझो कुबेर! अभी समय है। आओ, अब भी तुम त्याग-पथ के पथिक बनकर अपने जीवन का लाभ उठा सकते हो। किंतु

यदि तुममें त्याग की प्रचुर मात्रा लहरें मार रही हो, तब। नहीं तो · · ·

नौकर ने आकर डेपूटेशन के आने की सूचना दी। कुबेर उठे। उन्हें ज्ञान न था कि वह क्या बात करेंगे। उन्हें अपने में दृढ़ता का अभाव मालूम पड़ा। उन्होंने सोचा, चलो, इसी बहाने गाँव की उस देवी के दर्शन होंगे, जिसने अपनी उत्कृष्ट क्षमता से लोगों में नया जीवन पैदा कर दिया है।

कुबेर उस कमरे में पहुँचे, जहाँ तीन व्यक्तियों का छोटा सा डेपूटेशन सारे गाँव के भाग्य का निपटारा करने की प्रतीक्षा में बैठा था। कुबेर ने एक भरपूर नज़र से श्रद्धा के भाव से उन आगन्तुकों को देखा—किन्तु यह क्या?

कुबेर सन्न होकर खड़े रह गए! उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला। वह एकटक शान्तिदेवी के मुख की ओर देखते रह गए, और शान्तिदेवी एक चीख के साथ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी! कुबेर के मुख से एक शब्द न निकला।

डेपूटेशन के अन्य व्यक्तियों ने दौड़कर, शान्तिदेवी को उठाकर फ़र्श पर लिटा दिया। कुबेर ने नौकर को पानी लाने की आज्ञा दी। डा० रामसिंह ने कहा—"मालूम पड़ता है कई दिन से अत्यधिक परिश्रम करने से देवीजी को गश आ गया है।"

कुबेर ने ओठों पर उँगली रखते हुए कहा—"चुप रहिए। सब ठीक हो जायगा। चिन्ता की कोई बात नहीं।"

एक नौकर शान्तिदेवी पर बिजली का पंखा झल रहा था। कुबेर गीला कपड़ा उनके माथे पर रखकर मुँह पर पानी की छींटे देने लगे।

थोड़ी देर में शान्तिदेवी ने आँखें खोलीं, और उपस्थित व्यक्तियों की ओर घूमकर चौंक से उठ पड़ीं।

कुबेर ने कहा—"आप इन्हें यहीं विश्राम करने दें। काम की बातें फिर होंगी, इस समय इन्हें पूरा विश्राम चाहिए। आप लोग जाइए, इन्हें यहाँ कोई कष्ट न होगा।"

मदनमोहन तथा ठाकुर रामसिंह ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा, और धीरे से उठकर बाहर चलने लगे।

कुबेर ने कहा—"देखिए, यह बात जनता पर न प्रकट होने पाए, नहीं तो फिर दगा मचने से इन्हें कष्ट होगा।"

दोनों चले गए। उनके माथे पर हाथ फेरते हुए कुबेर ने कहा—आशा! अब तुम्हारा जी कैसा है?"

आशा ने आँखें खोलीं। कुबेर को निकट देखकर उसने कहा—'कुबेर दादा! तुम मुझे स्पर्श न करो। मैं इस योग्य नहीं हूँ। हटिए, आप हट जाइए।"

कुबेर ने धीरे से कहा—"चुपचाप विश्राम करो। तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है आशा।"

आशा ने फिर आँखें बंद कर लीं। शायद उसे नींद आ गई। थोड़ी देर बाद नौकर को पंखा झलने का आदेश देकर कुबेर वहाँ से चले गए।

आशा दिन-भर लेटी रही। शाम को उसे बुखार चढ़ आया। कुबेर ने आकर देखा, ताप-मान बहुत ऊँचा था।

आशा ने आँखें खोलीं। बुखार के कारण उसका मस्तिष्क ठिकाने न था। उसने आँखें फाड़कर कुबेर की ओर देखा।

"कैसा जी है आशा?" कुबेर ने निकट जाकर पूछा।

"आप कुबेर दादा हैं?" आशा बड़बड़ाई—"नहीं, आप नहीं हैं, आप—आप तो बड़े आदमी हैं, जमींदार हैं—मेरे कुबेर दादा, मेरे कुबेर दादा—न न-न—आप—आप मेरे कुबेर दादा नहीं हैं • • "

मुँह पर हाथ रखकर कुबेर ने कहा—"चुप रहो आशा। विश्राम करो। मैं ही तुम्हारा कुबेर दादा हूँ।"

"आप—आप—आप!" आशा ने आँखें फाड़कर उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"आप मेरे कुबेर दादा हैं! मेरे कुबेर दादा! मेरे—मेरे कुबेर—मेरे स्वामी—प्राणनाथ . . . ." कहते-कहते जीभ निकालकर आश्चर्य की मुद्रा प्रकट करती हुई एकाएक आशा चुप हो गई।

"सो जाओ। बात करने में तबियत खराब हो जायगी।" कुबेर ने उसे लिटाते हुए कहा।

"न-न-न, तुम मेरे कुबेर दादा! मैं तुम्हारी—मैं तुम्हारी आशा—आ—आ—मेरे कुबेर दादा! मुझे बचाओ। मुझे आश्रय दो। तुम मेरे स्वामी! मेरे . . .. ." कहती हुई आशा एकदम उठकर कुबेर के पैरों पर गिर पड़ी।

"क्या करती हो आशा? क्या लड़कपन कर रही हो? लेटो चुपचाप। नहीं, मैं चला जाऊँगा।" कुबेर ने उसे ज़बरदस्ती बिस्तरे पर लिटाते हुए कहा।

क्षण-भर आशा चुप रही, फिर लेटे-ही लेटे बोली—"मैं—मैं—अब तुम्हें नहीं छोड़ सकती कुबेर—तुमने मुझे क्यों अलग किया? क्यों—क्यों—मैं—मैंने तुमसे विवाह किया है—तुम मुझे क्यों छोड़ोगे? मैं तुम्हारी—तुम्हारी—आश्रिता तुम्हारी स्त्री—तुम—तुम—तुम—तुम्हें नहीं छोड़ सकते। किन्तु . . .."

आशा क्षण भर रुककर बोली—"किन्तु—किन्तु तुम अब बड़े आदमी हो—बड़े आदमी, राजा, ज़मींदार। हट जाओ—हट जाओ—तुम मेरे कुबेर नहीं हो—मेरे—मेरे—नहीं, हटो—हटो।" कहते हुए आशा ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

पास में बैठी नर्स को बुलाकर कुबेर ने कहा—"तुम इसी वक्त

रायपुर जाकर डॉक्टर चौधरी को लिवा लाओ। फ़ौरन लौटना डॉक्टर को लेकर।"

आशा बड़बड़ा रही थी। कुबेर बड़ी मुसीबत में पड़े। उन्होंने सबको कमरे से हटा दिया, और स्वयं आशा के पास जाकर बैठ गए।

"तुम कौन हो जी? उनकी गैरहाज़िरी में मेरे पास क्यों आते हो? हटो—हटो, मुझे तुम्हारा रुपया नहीं चाहिए। भागो – भागो। छोड़ दो जगदीश बाबू, मुझे छोड़ दो।" कहते हुए आशा उठकर भागने लगी।

कुबेर ने उसे दौड़कर पकड़ लिया। ज़बरदस्ती उसे बिस्तरे पर लिटाकर, उसे पकड़कर वह बैठ गए। वह किं-कर्तव्य विमूढ़ थे।

आशा चुप हो गई। कदाचित वह थककर फिर मूर्छितावस्था में आ गई थी। कुबेर उस पर धीरे-धीरे पंखा झलने लगे।

रात-भर बुख़ार की वजह से उसे बड़ी बेचैनी रही, सबेरे ४ बजे कुछ नींद आ गई। वह १० बजे दिन तक सोती रही।

नींद खुलने पर वह ज़रा शांत थी। कुबेर ने देखा, बुख़ार कम था।

लगभग १२ बजे डॉक्टर चौधरी आए। कुबेर को अभिवादन करके उन्होंने कहा—"कहिए, मरीज़ का क्या हाल है?"

"कुछ पूछिए नहीं, रात-भर बुरी दशा रही। आप देखें, क्या बात है। सबेरे से बुख़ार कुछ कम मालूम पड़ता है। कुबेर ने जवाब दिया।

डॉक्टर ने भली भाँति परीक्षा करके कहा—"हाँ, बुख़ार तो अब बहुत कम है, किंतु हृदय और मस्तिष्क की अवस्था बड़ी कष्टापन्न मालूम पड़ती है। कुछ उत्तेजना-सी मिली मालूम पड़ती है।"

"तब अब क्या करना चाहिए?" कुबेर ने पूछा।

"घबराने की बात नहीं। इन्हें खूब विश्राम और हलका भोजन

चाहिए। ईश्वर चाहेगा, ठीक हो जायगा। अच्छा हो, यदि इन्हें रायपुर ले चला जाय।"

"हूँ।" कहकर कुबेर चुप हो गए।

शाम को गाँव के कार्यकर्ता मिलने आए। कुबेर ने उन्हें बतलाया कि शांतिदेवी की अवस्था ठीक नहीं। डॉक्टर ने किसी से मिलने-जुलने को मना कर दिया है।

गाँववाले बहुत चकित थे। उन्हें कुबेर की बातों का भली भाँति विश्वास न हुआ, किंतु निरुपाय थे, अतएव चुप रहे।

आशा की तबियत दूसरे दिन से कुछ सँभलना प्रारंभ हुई। डॉक्टर ने राय दी कि अब इन्हें यहाँ से ले चलना चाहिए।

कुबेर ने आशा के पास जाकर धीरे से पूछा—"कैसी तबियत है आशा?"

उसने धीरे कहा—"अच्छी है।"

कुबेर उसके पास बैठ गए, और सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—‘रायपुर चलोगी? डॉक्टर ने यहाँ रहने के लिये मना किया है। चलोगी?"

आशा चुप रही। उसके नेत्र कुछ सजल मालूम पड़े। कुबेर ने कहा—‘घबराओ मत। सब ठीक हो जायगा। चलो, रायपुर चलें।"

दो दिन बाद रायपुर चलने की तैयारी हुई। कुबेर ने मोटर द्वारा आशा को ले जाने का प्रबंध किया। दरवाज़े के बाहर काफ़ी भीड़ उसे देखने के लिये जमा हो गई। कुबेर उसे सहारा देकर बाहर लाए।

ठाकुर रामसिंह ने उदास भाव से आशा के निकट जाकर कहा—"अब आपका जी कैसा है? कब तक लौटिएगा?"

आशा ने धीरे से कहा—"अभी कुछ ठीक नहीं।"

रामसिंह को आशा की बातों से निराशा हुई। उन्होंने फिर और कोई बात नहीं की। कुबेर आशा की बगल में जाकर बैठ गए।

मोटर चली गई।

भीड़ तितर-बितर हो गई। लोग परस्पर नाना प्रकार की बातें करते जा रहे थे।

एक वृद्ध ने कहा—"सेवा का मार्ग बड़ा कठिन है।"

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"विरले ही अपने विचार से दृढ़ होते हैं। व्रत और प्रलोभन का जन्म-जन्मांतर का वैर है।"

एक पढ़े-लिखे सज्जन बोले—"अजी, औरत की ज़ात का क्या विश्वास? वह तो कच्ची मिट्टी का घड़ा है घड़ा।"

रामसिंह एक साँस लेकर चुप हो गया। उसकी विचार-धारा तीव्र तथा लम्बी थी। वह निराश-सा मालूम पड़ता था। वह सोचने लगा, देखें, कब तक लौटती हैं।

वह आशा से प्रेम करता था।

---

[२३]

कुबेर में अब काफ़ी परिवर्तन हो चला था। देश-सेवा ने उसे कुछ-का-कुछ बना दिया था। अब वह अपनी गलतियाँ अनुभव कर रहा था। और यह सच है कि जो मनुष्य अपनी गलतियाँ स्वीकार कर लेता है, वह भविष्य में अतीत से भी बढ़कर विचारशील तथा सफल व्यक्ति हो उठता है। यह अब कुबेर भी समझ रहा था। उसने सोचा, वह अपने जीवन में सदैव असफल रहा है—वह असफल भाई, असफल पति, असफल गृहस्थ तथा असफल प्रेमी रहा है। उत्तेजना तथा भावुकता में पड़कर उसने अपना सारा जीवन बरबाद कर डाला।

वह सबको भूल रहा था। उसे इस प्रवंचना-पूर्ण संसार में अब किसी के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम न था। वह सबको भूल जाना चाहता था। छः वर्ष राजनीतिक बंदी रहकर उसने अपना प्रायश्चित्त कर डाला था। उसके हृदय में किसी के भी प्रति अब राग-द्वेष न था। अपने वर्तमान जीवन में वह सुखी था, किन्तु · · ·

वह माला को न भूल सका। उसके प्रति किए गए अन्याय को याद करके कभी-कभी उसके शांत हृदय में एक चिनगारी-सी जलती मालूम पड़ने लगती थी। न-जाने क्यों वह उससे एक बार मिलकर अपने कृत्यों पर खेद प्रकट करके क्षमा चाहता था। किन्तु उसको विश्वास था कि इस जीवन में अब कभी उससे भेंट न हो सकेगी।

किन्तु प्रायश्चित्त ! यह हो रहा था। प्रायः मानव-जीवन में हमारी कमज़ोरियाँ ही हमारे भविष्य को प्रशस्त करती रहती

है। जो लोग यह अनुभव करने लगते हैं कि हमारे दुर्भाग्य का कारण हमारी कमज़ोरियाँ ही हैं, वे सफलता के सोपान के निकट पहुँचने लगते हैं। प्रायश्चित्त ही इसकी पहली सीढ़ी है। सुमेर का प्रायश्चित्त हो चुका था, किन्तु आगे चढ़ने के सारे साधन वह खो चुका था।

एक दिन वह बिना किसी से कहे-सुने काशी चला गया। उसने सोचा, अब वह कुछ दिन वहीं शांति-लाभ करेगा। उसने नगर-कांग्रेस-कमेटी के आश्रम में अपने कपड़े-लत्ते रखे तथा गंगा-तट पर चल दिया।

दो सप्ताह वहाँ रहकर उसे बड़ी शांति मिली। एक दिन दशाश्वमेध-घाट पर सन्ध्या के समय वह बुर्ज़ पर बैठा हुआ आनन्द ले रहा था कि पास ही नीचे स्नान करती हुई एक अधेड़-सी स्त्री पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह स्त्री सुमेर को देखकर कुछ मुस्किरा दी।

सुमेर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे उस स्त्री की निर्लज्जता पर बड़ा क्षोभ हुआ। सुमेर ने उधर से दृष्टि हटा ली। स्नानादि के पश्चात् वस्त्र बदलकर वह सुमेर के पास बुर्ज़ पर आकर बोली—"आप यहीं के रहनेवाले हैं?"

सुमेर ने उसके मुँह की ओर गौर से देखते हुए कहा—"मैं? नहीं ... मैं बाहर का रहनेवाला हूँ।"

"तभी—तभी—तभी तो" वह मुस्किराते हुए बोली—"मैं तो पहले ही समझ गई थी। मैं तो—मैं तो ... "

बात काटकर सुमेर ने कहा—"आप चाहती क्या हैं?"

"मैं—मैं—मैं क्या चाहूँगी तुमसे? मगर हाँ! अच्छा, चलो!" कहती हुई मुस्किराकर वह चल दी।

सुमेर देखता ही रह गया। स्त्री अधेड़ अवश्य थी, किन्तु इस

अवस्था में भी उसे सुंदरी कहा जा सकता था। वह बार-बार सुमेर की ओर मुस्कराती हुई चली गई।

सुमेर उठकर आश्रम की ओर चल दिए। उन्होंने सोचा, धामों में जहाँ पुण्य है, वहाँ पाप भी। अब यहाँ अधिक ठहरना उचित नहीं।

दूसरे दिन सुमेर ने चलने की तैयारी कर दी। गंगा स्नान करके जैसे ही वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, पीछे से किसी ने उनका हाथ पकड़ लिया। उन्होंने पीछे घूमकर देखा। वही फलवाली स्त्री थी।

सुमेर ने हाथ छुड़ा लिया। स्त्री ने कहा—"क्या आप थोड़ी देर के लिये मेरे घर चलेंगे?"

सुमेर अजब चक्कर में पड़े। स्त्री ने गिड़गिड़ाकर कहा—"मेरे पति बड़ी विपत्ति में हैं। क्या आप—क्या आप ज़रा मेरे साथ चलेंगे?"

बहुत कुछ सोच-विचारकर सुमेर उसके साथ चल दिए। बहुत-सी गलियों में घुमाती हुई वह सुमेर को एक मकान के पास ले गई।

खटखटाने पर किवाड़ खुल गए। सुमेर उस स्त्री के पीछे-पीछे उस मकान में घुसे। मकान छोटा सा था। सामने एक कमरा था, जिसमें ३-४ दुबली-पतली तथा भड़कीली पोशाक पहने हुए लड़कियाँ बैठी थीं। सुमेर उन्हें देखकर दरवाज़े पर रुके। लड़कियाँ उन्हें घेरकर खड़ी हो गईं।

जो स्त्री सुमेर को लाई थी, वह पीछे खड़ी-खड़ी हँस रही थी। सुमेर ने घबराकर पूछा—"तुम लोग क्या चाहती हो?"

लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस दीं। सुमेर गिड़गिड़ाने-से हो

रहे थे। उन्होंने उस स्त्री से कहा—"तुम मुझे यहाँ क्यों लाई हो?"

स्त्री ने हँसते हुए कहा—"लाई, तो क्या कुछ गुनाह किया? ये सब तुम्हारे ही लिये तो हैं। जिसे चाहो, चुन लो।"

सभी लड़कियाँ सुमेर को अपनी-अपनी ओर खींचने लगीं। सुमेर ने झल्लाकर, उन्हें धक्का देकर दूर हटा दिया।

"अच्छा, इधर आओ।" उस स्त्री ने सुमेर को अपनी तरफ़ खींच लिया, और एक कोने में ले जाकर कहा—"मैं भी क्या तुम्हें पसन्द नहीं हूँ? आओ, मेरे साथ बैठो।"

सुमेर कठपुतली-से बैठ गए। बड़ी गौर से देखने पर सुमेर के दिल में बार-बार यह बात आती थी कि मैंने इस स्त्री को कहीं देखा अवश्य है। उन्होंने कहा—"तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

"अब भी नहीं समझे? वाह रे भोले!" कहते हुए उसने सुमेर के गले में अपने दोनों हाथ डाल दिए।

सुमेर ने उसे कसकर धक्का दिया, और अपने को अलग कर लिया।

"बदज़ात, धोखा देकर यहाँ ले आई, और अब इस प्रकार की हरकतें?" सुमेर ने दरवाज़ा खोलने की चेष्टा करते हुए कहा। किन्तु दरवाज़े पर ताला लटक रहा था।

"दरवाज़ा खोलो, मैं जाना चाहता हूँ।" सुमेर ने कहा।

इतने ही में किसी ने बाहर से दरवाज़े पर धक्का दिया। उस स्त्री ने पूछा—"कौन? रघुवर?"

"हाँ।" बाहर से आवाज़ आई।

किवाड़ खुल गए। सुमेर ने देखा, उन्हीं की तरह के तीन चार आदमियों को लिए हुए एक लम्बा-चौड़ा काला सा आदमी अन्दर घुसा।

दरवाज़े के अन्दर पहुँचकर उस आदमी ने उस स्त्री से कहा—"प्रभा, ले इनको अन्दर पहुँचा उन लड़कियों के पास।"

मौक़ा देखकर सुमेर वहाँ से निकल भागे।

२ ८ ९

सड़क पर पहुँचकर सुमेर ने साँस ली। उन्होंने समझ लिया कि वह स्त्री प्रभा के सिवा और कोई न थी। और वह रघुवर! छि! क्या दशा हो गई है इस स्त्री की भी आज। स्त्री कितना गिर सकती है। इतने बड़े धन-कुबेर की स्त्री भी इतना घृणित व्यवसाय कर सकती है?

सुमेर ने अपना कर्तव्य निश्चित करना शुरू किया। क्या इनका उद्धार संभव हो सकता है? और फिर कैसे?

दूसरे दिन वह दोपहर को उसी स्थान पर फिर पहुँचे। यद्यपि उनके हृदय में एक प्रकार का भय-सा था, फिर भी साहस करके उन्होंने दरवाज़े पर धक्का दिया।

"कौन?" अन्दर से आवाज़ आई।

"मैं हूँ, बाईजी मैं।" सुमेर ने धीरे से उत्तर दिया।

धीरे से किवाड़ खुल गया। खोलनेवाली स्वयं प्रभा थी। वह मुस्कराई।

सुमेर ने अब उसे भली भाँति पहचाना। वह वास्तव में प्रभा ही थी।

"क्यों, आ गई तबियत ठिकाने पर? कल यहाँ जल्दी भाग खड़े हुए थे?" वह हँसकर बोली।

"कल कुछ डर गया था। नई बात थी न? आज लौटकर आ गया।" सुमेर ने बनावटी हँसी हँसकर कहा।

"आओ, अन्दर चलें।" उसने सुमेर का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा।

"इस वक्त नहीं, शाम को। आज शाम को उसी घाट पर मिलोगी ?" सुमेर ने पूछा।

"दशाश्वमेध पर ? यहीं आ जाना न ?" उसने कहा।

"नहीं, वहीं मिलना, फिर अँधेरा होने पर यहाँ लौट आएँगे।" सुमेर बोले।

"लेकिन निराश मत करना। मेरी तबियत तुम पर आ गई है।" उसने एक कटाक्ष फेंकते हुए कहा।

"नहीं-नहीं, ज़रूर। अच्छा, अब चलता हूँ।" कहकर सुमेर जाने लगे।

"अच्छा, शाम को।" उसने मुस्किराकर कहा।

सुमेर चले गए।

शाम के पहले ही सुमेर दशाश्वमेध-घाट पहुँच गए। वह प्रभा की प्रतीक्षा में इधर-उधर टहलने लगे।

वह आई। ख़ूब सजी हुई थी। भाव-भंगियों से युक्त। वह सुमेर को देखकर मुस्किराई।

सुमेर उसके साथ घाट से सड़क पर आए। एक घोड़ा-गाड़ी पर वह प्रभा के साथ बैठ गए।

गाड़ीवाले ने पूछा—"किधर चलना होगा ?"

सुमेर ने धीरे से कहा—"कांग्रेस-कमेटी के आश्रम में।"

प्रभा ने साश्चर्य पूछा—"वहाँ क्यों जा रहे हो ?"

"अपना सामान उठाने। अब तो तुम्हारे यहाँ ही रहना जमेगा।" सुमेर ने ज़रा हँसते हुए कहा।

प्रभा क्षण-भर चुप रही, फिर बोली—"क्या कांग्रेस में काम करते हो ?"

"हाँ।" कहकर सुमेर चुप हो गए।

कांग्रेस-कमेटी के दफ़्तर में पहुँचकर सुमेर ने प्रभा को एक कोठरी में ठहरा दिया, और मंत्रीजी से सब वृत्तांत कहा।

दुःख प्रकट करते हुए मंत्रीजी ने कहा—"यह काशी है। आप नहीं जानते, यह इस प्रकार के व्यभिचारों का केंद्र है। आप ही बतलाइए, क्या किया जाय?"

"क्या कोई उपाय नहीं?" सुमेर ने एक उच्छ्वास लेकर कहा।

मंत्रीजी विचार में पड़ गए। सुमेर ने कहा—"तो इस आई हुई स्त्री का सुधार हो सकता है?"

"चलो, बात करके देखा जाय। हर्ज क्या है। यदि उसे सन्मार्ग पर लाया जा सके, तो कुछ-न-कुछ सेवा अवश्य हो सकती है।" कहकर मंत्रीजी उठ खड़े हुए।

प्रभा कमरे में बैठी हुई घबरा रही थी। सुमेर और मंत्रीजी को देखकर उसका हृदय धक्-धक् करने लगा।

मंत्रीजी ने कहना प्रारंभ किया—"बहन, इस बुरे मार्ग में चलकर आख़िर तुम्हें क्या मिलता है? क्या इस बुरे काम से तुम हट नहीं सकतीं?"

प्रभा का मुँह खुला—"बुरा काम करती हूँ या भला, इससे आप लोगों को क्या? मुझे जो अच्छा लगता है, वह करती हूँ। अच्छा, अब मुझे जाने दीजिए।"

प्रभा उठ खड़ी हुई। मंत्रीजी ने समझाया—"यदि भले रास्ते पर आना चाहो, तो मैं तुम्हारा इंतज़ाम कर सकता हूँ। यदि चाहो, तो तुम्हारा विवाह भी करा दिया जा सकता है। बोलो, बहन!"

प्रभा खिलखिलाकर हँस पड़ी—"क्या मेरा ब्याह नहीं हुआ है? मेरा आदमी मेरे साथ है। मैं चली।"

प्रभा चल दी। सुमेर उसके पीछे-पीछे आया। सड़क पर आकर सुमेर ने कहा—"प्रभा, क्या मेरे साथ रहना पसंद करोगी?"

"चल हट मूर्ख, तेरे-जैसे निकम्मे आदमियों को लेकर क्या चाटूँगी।" कहकर प्रभा एक कटाक्ष मारकर हँस दी।

सुमेर स्तंभित होकर उसे देखते रह गए। वह हँसती हुई चली गई।

सुमेर ने एक श्वास ली।

---

[२४]

रायपुर पहुँचकर आशा की तबियत बहुत कुछ सुधर गई। कुबेर ने किरण को सारा हाल बता दिया था। किरण अब आशा से उतनी घृणा न करती थी। उसे उस पर अब करुणा उत्पन्न होती थी।

जब आशा स्वस्थ हो गई, तो एक दिन कुबेर ने उससे पूछा — "सुमेर कहाँ है, बता सकती हो आशा!"

आशा अब पहले की सी आशा न थी। उसने प्रारंभ से लेकर अब तक सारा हाल कुबेर को सुना दिया। जगदीश की कथा सुनकर तो कुबेर अवाक् रह गए।

आशा कहती गई—"बस, तभी से उनका पता नहीं।"

कुबेर ने एक श्वास ली, और बोले—"इस लड़के ने भी अपने को मिटा दिया।"

आशा चुप रही।

कुबेर बोले—"एक बात यदि पूछूँ, तो बुरा तो न मानोगी?"

आशा ने नीचा सिर करके लज्जा-पूर्वक कहा— 'पूछिए।'

"अब तुम्हारा क्या इरादा है?" कुबेर ने पूछा।

क्षण भर चुप रहकर आशा ने कहा—"सुनिए कुबेर बाबू। मैं जीवन के सारे खेल खेल चुकी। यदि प्रारंभ से ही आप मुझे ग्रहण करते, तो आज मेरी यह दशा न होती। मेरे अधःपतन का दोष बहुत कुछ आपके सिरों पर है। सुमेर के साथ पथ भ्रष्ट होने का भी दोष आप ही पर है। वहाँ आपने आग और घी को एक साथ रहने दिया, और एकान्त में। चेष्टा करके भी अपने को न बचा सकी।

में विपत्तियों से घिरी थी, और उसके बाद मैंने उनका मार्ग साफ़ करने के लिये अपने को मिटा दिया। देवेंद्र की ओर मेरी कोई अनुरक्ति न थी, किंतु परिस्थितियों से पकड़कर मैं उनका आश्रय लेने के लिये विवश हुई। सोचा था, पापमय जीवन अब यों ही बीत जायगा, किंतु—किंतु यहाँ भी यह अभागिनी सुख से न बैठ सकी।" कहते-कहते आशा की आँखों से बड़े-बड़े आँसू गिरने लगे।

"उसके बाद" आशा कहती गई—"मैंने उनके सभी अत्याचार सहन किए, किंतु अंत में ठुकराई हुई-सी मुझे संसार में अपना निज का मार्ग ढूँढ़ने के लिये विवश होना पड़ा।"

कुबेर चुपचाप सब सुन रहे थे। आशा रो रही थी।

कुबेर का मुँह खुला—"और उन्हीं सब पापों का फल मैं आज भोग रहा हूँ। आशा! आज मेरा, मेरे सिद्धांतों का जैसा पतन और परदा फाश हुआ है, वह केवल मैं ही समझ रहा हूँ। कितने सुंदर थे वे दिन, जब मैं अपना छोटा सा संसार लेकर सुखी था। आज मेरा जीवन असफलताओं से भरा है।" कहते-कहते कुबेर ठहर खड़े हो गए।

आशा ने कहा—"अब सेवा का मार्ग ही मेरे लिये सर्वोत्तम मार्ग है। अब रही-सही ज़िंदगी देश-सेवा में व्यतीत करके अपने पापों का प्रायश्चित्त करना चाहती हूँ। अब मेरी यही एक साध है।"

क्षण-भर चुप रहकर कुबेर बोले—"कितना अच्छा होता, यदि मैं भी देश-सेवा के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर सकता।"

आशा ने कहा—"आपसे देश-सेवा अब बहुत दूर चली गई है कुबेर दादा! बुरा न मानिएगा, अब आपकी गणना पूँजीपतियों में है। इस देश का दुर्भाग्य है कि पूँजीपति देश-सेवक बन ही नहीं सकते। संसार के सभी देशों को पूँजीपतियों से लाभ है किंतु

परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ भारत पूँजीपतियों से कोई लाभ नहीं उठा सकता।"

कुबेर को आशा की बातों में तथ्य जान पड़ा। आज महीनों से वह इसी समस्या पर विचार कर रहे थे। उन्होंने कहा—"पूँजीपति बनते ही मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन हो जाता है, आशा! मैं देख रहा हूँ, मुझमें भारी परिवर्तन हो गया है। मैं दूसरों की सहायता नहीं कर सकता। मैं अच्छी भावनाएँ रखते हुए भी उनमें सक्रियता का अभाव देखता हूँ, किसानों की भलाई सोचता हूँ, किन्तु होते हैं उन पर मेरे द्वारा अत्याचार। ये सारी बातें मेरी बदली हुई मनोवृत्तियों का प्रत्यक्षीकरण हैं। मैं अब सचमुच पहले-जैसा कुबेर नहीं रहा आशा!" कहते-कहते कुबेर का कंठ अवरुद्ध हो गया। आशा के भी नेत्र सजल थे।

सहसा दरबान ने आकर खबर दी—"बिजरपुर से आदमी आया है। वहाँ की प्रजा में फिर से विद्रोह फैल रहा है।"

कुबेर चुपचाप बैठ रहे। कुछ सोचकर बोले—"अच्छा, भेजो उसे मेरे पास।"

गाँव के आदमी ने आकर खबर दी—"बिजरपुर में सुधारों की घोषणा न कर देने की वजह से फिर विद्रोह उठ खड़ा हुआ है। बाहर से भी कुछ नेता आए हुए हैं। सरकार का नाम ले-लेकर लोगों को सरकार के विरुद्ध भड़काया जा रहा है। बड़ी आफत मची हुई है। हम लोगों ने पुलिस से मदद माँगी, किंतु अभी तक किसी भी प्रकार की मदद नहीं पहुँची।"

कुबेर ने गाँव जाने की तैयारी की। बिरजू ने समझाया—"क्यों आप दूसरे काम में पड़ने जा रहे हैं?"

कुबेर हँसकर बोले—"तुमने तो मुझे चोरों से भी

गया-गुज़रा समझ लिया है किरण! मैं क्या कोई दूध बताशा हूँ, जो कोई घोलकर पी जायगा?"

किरण मिमियाकर चुप हो गई।

आशा ने कहा—"मैं भी चलूँ कुबेर दादा!"

कुछ सोच-समझकर कुबेर ने कहा—"तुम अभी यहीं ठहरो आशा!"

कुबेर अकेले ही गाँव के आदमी के साथ चल दिए।

किरण चिंतित हो उठी। आशा ने समझाया—"चिंता करना व्यर्थ है भाभी! उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

* * *

खिजरपुर में विद्रोह की आग फैली हुई थी। शांतिदेवी के रायपुर चले जाने से जनता यों ही कुबेरचंद के खिलाफ़ भड़की हुई थी, फिर नए नेता सर्वदानंद के आ जाने से लोगों में नया जीवन आ गया था। कारिंदों और गुमाश्तों के रवैयों में किसी प्रकार का भी सुधार न हुआ था। उनके अत्याचारों ने आग को और भड़काया। सारे गाँव में लगान-बंदी का ज़ोर था। रोज बड़ी-बड़ी सभाएँ करके ज़मींदार की निंदा की जाती थी।

कुबेर जिस समय गाँव पहुँचे, उस समय एक बड़ी भारी सभा हो रही थी, और गाँव के गुमाश्ते कारिंदे कुछ लठैतों को लिए हुए सभा भंग करने का प्रयत्न कर रहे थे।

कुबेर का कोठी पर आना किसी को ज्ञात न हुआ। उन्होंने पहुँचते ही फौरन् जमादार को आज्ञा दी कि मुख्य गुमाश्ते को हाज़िर करो।

गुमाश्तेजी सभा में हुल्लड़बाज़ों पर मरदाना बने हुए थे।

जब जमादार ने आज्ञा सुनाई, तो वह दौड़ते हुए कुबेर के सामने आ उपस्थित हुए।

उनका वीरोचित वेष देखकर कुबेर को हँसी आ गई। उन्होंने पूछा—"क्या ख़बर है अर्जुनसिंह ?"

"सरकार, सब ठीक है। अब आप आ गए हैं, तो दो मिनट के अन्दर सभा भंग कराए देता हूँ। इन लोगों ने सरकार को समझ क्या रक्खा है ?" अर्जुनसिंह ने अपनी शक्ति का आभास मालिक को दिखलाते हुए कहा।

कुबेर ने कहा—"सभा भंग न की जायगी। अपने आदमियों को आज्ञा दो कि फ़ौरन सभा से हटकर चले जायँ।'

अर्जुनसिंह का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। वह बोला—"लेकिन सरकार··· ····· · · ' "

बात काटकर कुबेर ने कहा—"फ़ौरन् जाकर मेरी आज्ञा का पालन करो। जाओ।'

अर्जुनसिंह आदाब बजाकर चला गया। थोड़ी देर में सभी आदमी वहाँ से हट गए।

कुबेर थोड़ा विश्राम करके तथा मुँह-हाथ धोकर सभा की ओर चले। अर्जुनसिंह मोटा-सा लट्ठ लेकर उनके पीछे चला।

कुबेर ने उसे देखकर आज्ञा दी—'तुम लौट जाओ। मेरे साथ किसी के आने की आवश्यकता नहीं।"

अर्जुनसिंह लौट गया। सभा में काफी जमाव था।

मगनदास ने [illegible] भाषण देते हुए कहा—"भाइयो, हमें जमींदार का डटकर मुकाबिला करना है। [illegible] मानने वाले तो नहीं, हमें उनसे समझकर बातें करना है।"

इसी समय कुबेर चुपचाप आकर मंच पर बैठ गए। उन्होंने [illegible] को फ़ौरन पहचान लिया। वह कुबेर थे।

कुबेर उठकर खड़े हो गए। उन्होंने कहना शुरू किया—
"भाइयो,

आज मैं पहली बार यह घोषणा करने के लिये खड़ा हुआ हूँ कि मैं अपनी ओर से आपके पूज्य नेता श्रीसर्वदानंद पर ही इस गाँव का प्रबंध का सारा भार छोड़ता हूँ। वह जिस तरह चाहें ...... '

और यह क्या ? सर्वदानंद दौड़कर कुबेर के पैरों पर गिर गए। सभा में हुल्लड़ मच गया। लोग उठकर खड़े हो गए। कुबेर को धीरे-धीरे बेहोशी-सी आ रही थी। वह थोड़ी देर में मूर्च्छित होकर मेज़ पर गिर पड़े।

लोगों में भगदड़ मच गई। सभा में कोई भी इस रहस्य को न समझ सका। सर्वदानंद अन्य लोगों की सहायता से कुबेर को उठाकर कोठी पर ले गए।

कोठी के सारे कर्मचारी दौड़-धूप में लग गए। कोई आश्चर्य में सर्वदानंद की ओर देखता और कोई कुबेर की ओर।

थोड़ी देर में कुबेर को होश आ गया।

दूसरे दिन सवेरे कुबेर सुमेर को साथ लेकर रायपुर चल दिए। किरण सुमेर को देखकर आनंदाश्रु बहाने लगी। समय ने सबको अधिक निकट कर दिया था। आशा को देखकर सुमेर को बहुत आश्चर्य हुआ।

कुबेर का जी अब हल्का हो चला था। वह अब दिन रात आत्म शुद्धि की चिंता में थे।

एक दिन सवेरे उनका पता न था। बहुत खोज करने पर सिरहाने एक पत्र पाया गया। उसमें लिखा था—

"जीवन की ये शेष घड़ियाँ अब देश-सेवा में बीतेंगी। मैं वहाँ जा रहा हूँ, जहाँ मुझे शांति मिले।

"मैं जिस वस्तु को पाकर अपने सिद्धांतों से गिर गया था,

उसे छोड़कर जाने के लिये मेरा मन छटपटा रहा था सुमेर! तुम उसे सँभालना।

"आशा! तुम सुमेर से विवाह करके सुख भोगना। तुम दोनों को मेरी यही अंतिम आज्ञा है।

"वास्तव में कुबेर हो जाने से मेरा महत्त्व घट गया था, आज कोरा नाम का कुबेर हो जाने पर मैं मनुष्य हूँ।

"सुमेर! किरण तुम्हारी मा है। तुम और आशा पति-पत्नी के कर्तव्य पूरे करो।

तुम्हारा
कुबेर।"

उपसंहार

सुरेश और आशा सदैव के लिये एक हो गए।

कुबेर को फिर किसी ने कभी नहीं देखा। किंतु उसे देखा— आशा ने स्मृतियों में। और किरण ने स्वप्नों में।